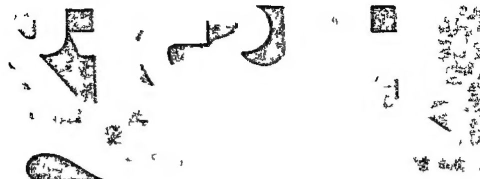
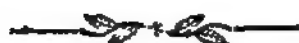


शिवम्

सुन्दर

श्री चन्द्रप्रभ

प्रस्तावना



सर्व सज्जन पुरुषों से निवदन है कि हमने जैन जाति की सेवा बजाने के हेतु हिन्दी जैन नाम का साप्ताहिक पत्र आज ८ महीने से निकालना शुरू किया है और यह भी निश्चित किया है कि हिन्दी भाषा में जो अपने धार्मिक पुस्तकों का आभाव है, वह शने २ दूर करें इसी उद्देश्य से विद्वजनों से प्रार्थना की था कि आप लोग उत्तमोत्तम पुस्तकें रचकर हमें भेजें तो हम उन्हें प्रकाशित कर हमारी कौमके अर्पण करें, हमारी प्रार्थना अनुसार श्रीयुत् सेठ सा० जमनालालजी कोठारीने ५ । ६ पुस्तकें प्रकाशित करने को दी वह समयानुसार प्रकाशित करके आप सज्जनों के सन्मुख रखते जावेंगे । प्रथम हिन्दी जैन ग्रन्थमाला का प्रथम पुष्प "शुद्धदेव अनुभव विचार नामक पुस्तक हम इन्हा महाशयजी का दिया हुआ प्रकाशित कर चुके हैं अब यह द्वितिय पुष्प "आगमसार" नाम का आप की सेवा में उपस्थित है आशा है कि आप श्री इस ग्रन्थ माला को उदाराश्रय देंगे ।

जो जो पुस्तकें हम को जमनालालजी सा० ने दी हैं उनके लेखक हैं स्वर्गीय चिदानन्दजी महाराज । आप ने इन पुस्तकों को लिखकर छपवाने का इन्तजाम करने के वास्ते जमनालालजी सा० को दी थी वह उन्होंने हमे प्रदान की इस के लिये हम उनका हार्दिक धन्यवाद देते हैं, उक्त महाराज जीने जो जो पुस्तकें लिखी हैं वह आज दिन तक हिन्दी भाषा मे प्रकाशित नहीं हुई हैं ।

आगमसार—यह पुस्तक देवचन्दजी महाराज कृत गुजराती भाषा म प्रकाशित हुआ है पर हमारे पूर्व मालवा, मारवाड इत्यादि

देशों में गुजराती भाषा जानने वाले बहुत कम लोग होनेसे पूज्य चिदानन्दजी महाराजने सब भव्य आत्मार्थियोंके लाभार्थ इस को हिन्दी भाषांतर कर अनेक जगह हेतु, दृष्टान्तों से अच्छी तरह से समझाया है।

अन्तमें पाठकगणों से यही प्रार्थना है कि इस पुस्तक में कोई गलती रह गई हो तो क्षमा कर हमें सूचित करें तो द्वितिया वृत्ति में शुद्ध कर ली जावे। गलती होना तो सभव है कि पुस्तक कई गुरुतकी लिखी हुई है, वास्ते क्षमा मागता हूं।

भवदीय

कस्तूरचन्द जवरचन्द गादिया

सम्पादक हिन्दी जैन—

सू० —उक्त चिदानन्दजी महाराजने अन्त मंगल का कविता जो लिखी थी सो कोठारीजी को न मिलने से नहीं छापा—

-

॥ श्री ॥

आगमसार.

(हिन्दी भाषान्तर)



श्री चिदानन्दजी महाराज कृत.

॥ श्री वीतरागायनम ॥ उपाध्यायजी श्रीदेवचन्द्रजी कृत आगमसार ग्रन्थ गुजराती भाषा मे बना हुआ है। सो उस ग्रन्थ के पठन पाठनमें गुजराती लोगोंके सिवाय अन्य २ देशके पाठक गणोंको उस गुजराती भाषा वाचने और समझनेमे बहुत परिश्रम उठानेम भी उस ग्रन्थ के रहस्य का यथावत् बोध नहीं होता। इसलिये कितने हा एक पाठकगणोंने मेरे से कहा कि इस आगमसार ग्रन्थकी प्रक्रिया गुजराती भाषामें है ऐसी रीति की प्रक्रिया और कहीं २ जो कि कठिन विषय है उस कठिन विषयका रहस्य हिन्दुस्तानी सरल भाषामें होजाय तो हर एक पाठक गणोंको वाचने और समझनेमें सुगमता होगी और जिन धर्मके रहस्यकी यथावत् प्राप्ती हो जायगी। इस कारण से आप पाठकगणों के उपकारके लिये इस ग्रन्थकी गुजराती भाषा में हिन्दुस्तानी सरल भाषा बना दीजिये। इसलिये मैं इस गुजराती भाषाकी हिन्दुस्तानी सरल भाषा में श्रीदेवचन्द्रजी के ग्रन्थानुसार यथावत् कहने की तो शक्ती है नहीं क्योंकि ऐसे पंडितों के किये हुए ग्रन्थका रहस्य जानना ही बहुत कठिन है परन्तु जिस गुरुने मेरेको इस जैन धर्मका मार्ग बताया है उस गुरुकी चरण कृपासे मेरी बुद्धि के अनुसार किंचित अर्थ कहता हूँ सो जो बुद्धिमान पाठकगण मेरी न्यूनता दूर करके ग्रन्थको यथावत् वाच कर रहस्य समझ लेय

इसलिये मैं सबको नम्रता पूर्वक विनती करता हूँ और श्रादबन्द्र-जाने आगमसार ग्रन्थ का जिस रीति से प्रक्रिया लिखा है उसी रीति से दिखाता हूँ। प्रथम से जीव अनादि काल का मिथ्यात्वी था सो काल लब्धि पाय (प्राप्त) करके तीन करण करता है। (सो पेश्तर काल लब्धि किसको कहते हैं उसका दृष्टांत और दृष्टांत देकर समझाते हैं) कि जैसे नदी घोलन्याय करके पत्थर चीकना कोई तरहका आकार अच्छा पकड़ लेता है ॥ तैसे ही जीव भी सज्ञीपचेन्द्री को प्राप्त होता है। सो पेश्तर दृष्टांत इस रीति से है कि कोई नदी पहाड़ से बहती है उस नदीमें पानी का संग होकर पत्थर भी पानीके जोरसे दुलकता हुआ नदीमें बहता २ कुछ दिनके बाद पत्थर और जल से भिड़ता हुआ अर्थात् टक्कर खाता हुआ ठोकर खाय कर एक लम्बे या गोल सचिक्कन आकार को प्राप्त होता है। तब उसको लोग कोई तो नर्मदेश्वर महादेव और कोई शालिग्राम आदि अनेक तरहकी कल्पनाउसमें सचिक्कन सुहावने आकार को देखकर कर लेते हैं उसका यथावत् स्वरूप हो जाना अर्थात् कोई तरहका आकार बन जाना उसीका नाम काल लब्धि है। अब इस दृष्टांत का दृष्टांत इस रीति से है कि यह जीव अव्यवहार राशि से निकल कर व्यवहार राशि में बादर निगोद, अथवा बे इन्द्री, ते इन्द्री, चौइन्द्री, पने को भोगता हुआ अकाम निर्जरा से सज्ञीपचेंद्री पनेको प्राप्त होना उसीका नाम काल लब्धि है। क्योंकि जब तक सज्ञीपचेन्द्री पना न होय तबतक जीव करण आदि कोई व्यवस्था को न पहुँचे। इसलिये सज्ञीपचेंद्री होना उसीका नाम काल लब्धि है। इस रीति से काल लब्धि का स्वरूप कहा ॥ इस काललब्धिको पाय कर जीव ३ करण करता है। सो पेश्तर (३) करणका नाम कहते हैं ॥ १ यथा प्रवृत्ति करण।

२ अपूर्व करण । ३ अनिवृत्ति करण सो प्रथम यथा प्रवृत्ति करण जिस रीति से जीव करता है वो रीति दिखाते हैं । १ ज्ञानावरणीय । २ दर्शनावरणीय । ३ वेदनी । ४ अन्तराय । इन चारों कर्म्मोंकी (३०) कोडा कोडी सागर प्रमाणस्थिति होती है ऐसा जिन आगमोंमें कहा है । सो इन चार कर्म्मोंकी जो स्थिति है उस में उगनतीस कोडाकोडी किंचित् अधिकस्थिति को दूर कर अर्थात् निल कुल अलग करे । और एक कोडा कोडी किंचित् न्यूनस्थिति राखे और १ नामकर्म । २ गोत्रकर्म । इन दोनों कर्म्मोंकी (२०) कोडा कोडी सागरकी स्थिति है जिसमें से किंचित् अधिक उगणीस कोडा कोडी सागरस्थिति अलग अर्थात् दूर करे । और मोहनी कर्मकी स्थिति (७०) कोडा कोडी सागर प्रमाणकी है । उनमें किंचित् अधिक (६९) कोडा कोडी सागर प्रमाणस्थिति को अलग (दूर) करे ॥ इस रीति से एक आयु कर्मका छोडकर उस पर लिखी ७ कर्मोंकी स्थितिमें से एक कोडा कोडी सागर पल्योपममें से असंख्यातवा भाग न्यून अर्थात् कमती एक कोडा कोडी सागर प्रमाण सात कर्म की स्थिति राखे ॥ बाकी सातों कर्मों की सर्वस्थिति को दूर अर्थात् अलग करे ऐसा जो वैराग्य रूप उदासीन प्रमाण का होना उसका नाम यथा प्रवृत्ति करण है । क्योंकि मरकट वैराग्य होने से जीव उदास हो जाता है उस उदास पने के कारण से ऊपर लिखी हुई स्थिति को जीव दूर कर देता है। मर्कट वैराग्य अर्थात् मसानिया वैराग्य उसको कहते हैं कि जब मनुष्य मरता है उसको जात बिरादरी वाले मिलकर मसान अर्थात् मरघटमें दाग देने को ले जाते हैं उस वक्त जब तक उस को दाग न लगे तबतक वे लोग नाना प्रकारकी वैराग्य रूप बातें और संसार को तुच्छ बतलाना कहते हैं । किंचित् ही देरमें उस

वैराग्य और संसारकी तुच्छताको छोडकर उदासीनता से अलग होकर नाना प्रकार की अच्छा ? खान पीने नाच रंग व्याह् सादी का बात करने लग जात हैं सो उस किंचित् वैराग्य परिणाम का पता नहा रहता । इसलिये उसको मर्कट वैराग्य कहा ॥ इस रीति स हो यथा प्रवृत्ति करणको अनेक जीव करे । अथवा अभव्य भी इस करण को करे और एक जीव इस यथा प्रवृत्ति करण को अनन्ति वार कर परन्तु इस कारणकरनेसे कोई जीवका कार्य सिद्ध नहीं होता इस लिय इसको यथा प्रवृत्ति करण कहा । अब दूसरा अपूर्व करण का स्वरूप कहते हैं । कि जो यथा प्रवृत्ति करण में किंचित् न्यून एक कोडा कोडी सागर की स्थिति रहती थी उस स्थिति मस एक अन्तर्मुहूर्त और अनादि मि यात्व अनन्तानुबन्धी कषाय अर्थात् क्रोध, मान, माया लोभ छोडन का अज्ञान हय अर्थात् छोडना (दूर करना) ज्ञान उपादय अथात् ग्रहण करना ऐसा जो इच्छा रूप परिणाम । अपूर्व कहता पेश्तर कभी अज्ञान को छोडना ज्ञानको ग्रहण करना ऐसा परिणाम अनादी कालस न हुई थी और जिस वक्त ऊपर लिखी हुई इच्छा होन सही इसको अपूर्व करण कहा ॥ क्योंकि इस करणको वही जीव करेगा जोकि समकित के लायक होगा ॥ और जो समकितके लायक नहीं है वो इस अपूर्व करणको कदापि न करसकता क्योंकि देखो ॥ श्लोक ॥ जाल पश्यति लिंगमध्यम बुद्धिर्विचार यति आगमदत्तत्तु बुध परीक्षत सर्वयत्नेन ॥ १ ॥ इस रीतिस अपूर्व करणका स्वरूप कहा । (प्रश्न) यथाप्रवृत्ति करणस अपूर्व करणको अति उत्तम कहा इसका कारण क्या है (उत्तर) भो देवानु प्रिय यथा प्रवृत्ति करणसे अपूर्व करणको अतिउत्तम कहा इसका कारण यह है कि यथा प्रवृत्ति करणको अनेक

जीव करे और अभव्य भी करे और एक भवमें अर्थात् एक जन्म में कईवार यथा प्रवृत्ति करण करे ॥ और अपूर्व करण अभव्य तो कभी नहीं करसके। और भव्यजीव भी जो अपूर्व करण करे वो प्राय करके अनिवृत्ति करण अवश्यमेव करे इस लिये अपूर्व करणकी उत्तमता कही। दूसरा जो तुमने सन्देह किया कि यथा प्रवृत्ति करण कर्मोंका क्षय करता है और अपूर्व करणमें कर्म क्षय नहीं होता ॥ इस सन्देहके दूर करनेके वास्ते एक दृष्टान्त देते हैं कि जैसे कोठीमें धान भरा हुआ है और उसका नीचेसे ढकन खोल देय तो उस कोठीका धान नीचे तमाम ढेर हो जाय परन्तु जो उस कोठीके कोनोंमें वा भींतसे चिपका हुआ धान है सो ढकन खोलनेसे नहीं निकलता किन्तु हाथ गेरनेसेही निकलेगा इस दृष्टान्तका दृष्टान्त ऐसा हुआ कि जो (७०) कोडाकोडी और (३०) कोडाकोडी वा (२०) कोडाकोडी सागरोंकी स्थिति (७) कर्मोंकी ऊपर लिख आये हैं सो बतौर कोठीके नाजके समान है सो यथा प्रवृत्ति करणवालेका वैराग्य रूप उदासीन रूप ढकन खोलनेसे एक सग कर्मोंकी स्थिति दूर होजाती है बतोर नाजके ढेरके समान ॥ और जैसे उस कोठीमें चिपटा हुआ नाज विना हाथ गेरे नहीं निकलता तैसेही जबतक अज्ञान छोडना और ज्ञानको ग्रहण करने रूप परिणाम बतोर हाथ गेरनेके न होंगे तबतक वो चिपटा हुआ धान न निकले तैसेही कर्म भी बतोर धान चिपटनेके हेय ज्ञेय समझे विदून नहीं दूर हो सक्ते हैं ॥ इस लिये जो अपूर्व करणमें अज्ञानका छोडना और ज्ञानका ग्रहण करना इस रीतिके परिणाम होनेसे यथा प्रवृत्तिसे अपूर्व करण उत्तम कहा ॥ अब तीसरा अनिवृत्ति करणका स्वरूप कहते हैं ॥ जो स्थिति कर्मोंकी पिछले करणोंमें बाकी रही है उसमेंसे भी मुहूर्त

रूप स्थिति दूर करके शुद्ध निर्मल समकित पावे मिथ्यात्वका उदय मिट अथात् दूर होय तब जीव उपसमसमकित पावे । ऐसा जो परिणाम उसका नाम अनिवृत्ति करण कहते हैं ॥ इस कारण करनेसे जीव गंठी भेदा कहा जाता है क्योंकि श्री आवश्यक नियुक्तिमें ऐसा कहा है ॥ गाथा ॥ जागंठीतापढम गंठी समय छे दभवराउ अनियट्टी करणे पुण समत्तपुरक्खडे जीवेऊ सरदे सहहुताय च विज्ञायवण देवो इयमिच्छनस्स अणुदयेउव सम सम्मत्तह इ जावो ॥ इन दो गाथाका किंचित् अर्थ दिखाते हैं कि (जागंठीतापढमक०) गंठीके पास प्रथम अर्थात् यथा प्रवृत्ति करण करनेवाला आता है । और गंठी छेदनेवाला जीव परिणामसे अपूर्व करण करता है । और अनिवृत्ति करणवाला जीव अन्त करण करता हुआ समकितको प्राप्त होता है ॥ दूसरी गाथाका अर्थ ॥ जो जीवसमकित पाता है वो जीव उस वक्त आनंदको प्राप्त होता है कि जेसे दावानल अग्नि लगी हुई होय और एक साथही शान्त होजाय तैसेही जीव मिथ्यात्व रूप अग्निसे अलग होकर आनंदको प्राप्त होता है । इसका विशेष विचार देखना होय तो हमारा बनाया हुआ (जिनाज्ञा विधि प्रकाश) ग्रन्थमें देखो ॥ इस रीतिसे तीन कारणका स्वरूप कहा ॥ इन तीनों करणोंका किंचित् अर्थ भी दिखाते हैं कि ॥ जिस कालमें सबकी प्रवृत्ति होय अर्थात् हरेक कोइ करता होय इसका नाम यथा प्रवृत्ति करण है और अपूर्व करणका अर्थ यह है कि जो पूर्वे नाम पहलकभी भी हेय छोड़ना और उपादेयको अंगीकार करना ऐसा परिणाम आया होय और जिस समयमें अज्ञानको छोड़ना ज्ञानका ग्रहण करना ऐसा परिणाम होय उसका नाम अपूर्व करण है॥अब तीसरा अनिवृत्ति करणका अर्थ करते हैं कि अन्यनाम दूसरसे होती है निवृत्ति

अर्थात् अलग हो जाना उसका नाम अनिवृत्ति करण है ॥ इसरीतिसे इन तीनोंका अर्थ कहा (प्रश्न) आपने अपूर्वको कहा कि पेश्तर कभी न होय उसका नाम अपूर्व है और आगमोंमे कहा है कि पूर्व नाम थोडी देर ठहर कर चला जाय उसका नाम अपूर्व है तो आपका कहना क्यों कर बनेगा (उत्तर) भो देवानु प्रिय अभी तेरेको द्रव्यानुयोगके जाननेवाले और गुरुकुल वासके बसने वाले शुद्ध गुरुओंका संग नहीं हुआ है केवल दु ख गर्भित वैराग्यवालोंका संग हुआ है इस लिये जिन मतके रहस्यकी खबर नहीं है सो हे भोले भाई इस जगह अपूर्व कहनेका अभिप्राय तेरेस मझमें न आया इस लिये तेरेको ऐसा सन्देह हुआ सो इस तेरे सन्देह मिटानेके वास्ते कहते हैं कि जिन मतमें अनादि अनन्तादि चौभंगी हरेक चीजमें लगती है सो इस जगह भी उस चौभंगीके लगानेसे सन्देह मिट जाता है सो चौभंगीका दूसरा भागा अनादि सान्त भागेसे इस जगह अपूर्व करण है और जो थोडीसी देर ठहरता है उसको सादि सान्त अपूर्व कहते हैं इस लिये इस ग्रन्थकर्त्ता उपाध्यायजीका अभिप्राय अपूर्व करण अनादि सान्त भागेसे मालूम होता है ॥ इस रीतिसे तेरे प्रश्नका उत्तर हुआ ॥ तीनो करण करके बाद जीव समकित पावे उस समकितकी श्रध्दा अर्थात् विश्वास दो प्रकारका होता है । एक तो व्यवहार अर्थात् शुभ व्यवहार ॥ दूसरा निश्चय अर्थात् शुध्द व्यवहार ॥ अब इस जगह कोई ऐसा सन्देह करे कि समकितकी प्राप्ति होगई तो फिर श्रध्दा दो तरहकी है ऐसा क्यों कहा ॥ इस शंकाका समाधान ऐसा है कि समकित पायेके बाद जीव फिर भी मिथ्यात्वमें चला जाता है इस लिये श्रध्दा दो प्रकारकी कही ॥ अब प्रथम व्यवहार समकित का स्वरूप कहते है कि । देव श्रीअर्हन्त । गुरु जो साधु सीधा

गुण कहते हैं ॥ प्रथम धर्मास्तिकायके ४ गुण अरूपी १ । अचेतन २ । अक्रिय ३ । चलन सहाय अर्थात् जीव पुद्गलको चलनेमें सहाय देनेवाला ४ । अब अधर्मास्तिकायके चार गुण कहते हैं ॥ अरूपी १ । अचेतन २ । अक्रिय ३ । स्थिति सहाय अर्थात् जीव पुद्गलको स्थिर करनेमें सहाय देने वाला ४ ॥ अब आकाशास्तिकायके ४ गुण कहते हैं ॥ अरूपी १ । अचेतन २ । अक्रिय ३ । अवगाहना दान गुण अर्थात् कुल द्रव्योंको जगह देने वाला ४ ॥ अब काल द्रव्यके चार गुण कहते हैं ॥ अरूपी १ । अचेतन २ । अक्रिय ३ । नया पुराना वर्तना अर्थात् नवको पुराना करना ऐसी है शक्ति जिसकी उसको काल कहते हैं ४ ॥ अब पुद्गलास्तिकायके चार गुण कहते हैं ॥ रूपी १ । अचेतन २ । सक्रिय ३ । मिलन विखरन अर्थात् सामिल होजाना अलग होजाना अथवा पूरन गलन है स्वरूप जिसका उसको पुद्गल द्रव्य कहते हैं ४ ॥ अब जीवके चार गुण कहते हैं ॥ अनन्त ज्ञान १ । अनन्त दर्शन २ । अनन्त चारित्र ३ । अनन्त वीर्य ४ । यह चार गुण जीवके कहे ॥ इस रीतिसे छओं द्रव्योंके गुण कहे ॥ अब पर्याय कहते हैं ॥ धर्मास्तिकायके चार पर्याय ॥ स्कन्द १ । देश २ । प्रदेश ३ । अगुरुलघु ४ । अधर्मास्तिकायके चार पर्याय ॥ स्कन्द १ । देश २ । प्रदेश ३ । अगुरु लघु ४ । आकाशास्तिकायके चार पर्याय ॥ स्कन्द १ । देश २ । प्रदेश ३ । अगुरु लघु ४ । काल द्रव्यके चार पर्याय ॥ अतीत अर्थात् भूत १ । अनागत अर्थात् भविष्यत २ । वर्तमान ३ । अगुरु लघु पुदगल द्रव्यके चार पर्याय ॥ वरण १ । गन्ध २ । रस ३ । स्पर्श अगुरु लघु सहित ४ । जीव द्रव्यके चार पर्याय ॥ अव्याबाध १ । अनअवगाह २ । अमूर्तिक ३ । अगुरु लघु ४ । इस रीतिसे छओं द्रव्योंके पर्याय कहे ॥ अब इन छओं द्रव्योंके गुण

पर्यायम जो कि आपसमे स धर्मीपना है उसको कहते हैं ॥ अगुरु लघु पर्याय सर्व द्रव्योंमे सरीसा अर्थात् समान है ॥ और अरूपी गुण पाच द्रव्यामें है एक पुद्गलमें द्रव्यमे नहीं ॥ अचेतनपना पाच द्रव्योंमें है एक जीव द्रव्यमें नहीं ॥ सक्रिय गुण जीव और पुद्गल दो द्रव्योमें है बाकी चार द्रव्योंमें नहीं ॥ चलनेमें सहाय देना एक धर्मास्तिकायमे है बाकी पाचमे नहीं ॥ स्थित होनेमे सहाय देना एक धर्मास्तिकायमें है बाकी पाचमें नहीं ॥ अवगाहना अर्थात् जगह देनेका गुण एक आकाशास्तिकायमें है बाकी पाच नहीं ॥ वर्तना अर्थात् नया पुराना करना काल द्रव्यमे है बाकी ५ में नहीं ॥ मिलन निखरन अर्थात शामिल होना या जुदा होना एक पुद्गल द्रव्यमें है बाकी पाचमें नहीं ॥ ज्ञानादि चेतनालक्षण एक जीव द्रव्यमें है बाकी पाच द्रव्योंमे नहीं ॥ यह मूल गुण किसी द्रव्यका किसी द्रव्यमे नहीं मिलता इस लिये इस मूल गुणके न मिलनेसे जुदे २ द्रव्य कहलाते हैं ॥ धर्म द्रव्य, अधर्म द्रव्य, और आकाश द्रव्य, इन तीनो द्रव्योंमें तीन गुण और चार २ पर्याय एक सरीखा है ॥ और तीन गुण करके काल द्रव्य भी इन्हींके समान है ॥ इस रीतिसे इनका साधर्म और वैधर्मपना कहा ॥ अब छ द्रव्योंके गुण जाननेके वास्ते एक गाथा अर्थ समेत कहते हैं ॥ गाथा ॥ परणामिजीव मुत्तास पएसा एक खित्ता किरियाय निच्च कारणकत्तासससब्बगयइयर अपवेस ॥ अर्थ ॥ निश्चयनय करके छ द्रव्य परणामी अर्थात् अपने २ परणाममें है और व्यवहारनयसे जीव और पुद्गल दो द्रव्य परणामी है । धर्म अधर्म, आकाश, काल, ये चार द्रव्य अपरिणामी है ॥ छ द्रव्योंमें एक जीव द्रव्य है, पाच अजीव द्रव्य है । छ द्रव्योंमें एक पुद्गलरूपी है, । पाच अरूपी है । छ द्रव्यमें एक काल द्रव्य अप्रदेशी है, बाकी

पाच स प्रदेशा है। जीव द्रव्य असख्यान् प्रदेशी है, पुद्गल प्रमाण अनन्त प्रदेशा है। धर्म, अधर्म,असख्यान् प्रदशी है आकाश लाक अलाक अनन्त प्रदेशी है। छ द्रव्यमे धर्म, अधर्म, आकाश,ये तीन द्रव्य एक रह। जीव पुद्गल, काल ये तीन द्रव्य अनक हैं॥ छ द्रव्यमे एक आकाश क्षेत्र है, और पाच क्षेत्रिय है ॥ निश्चयनय करके छ द्रव्य सक्रिय हैं। व्यवहारनय करके जीव, पुद्गल, दो द्रव्य सक्रिय। चार द्रव्य अक्रिय है ॥ निश्चयनय करके छ द्रव्य नित्य, और अनित्य है, व्यवहार नय करके जीव पुद्गल अनित्य है। चार द्रव्य नित्य हैं॥ छ द्रव्य में एक जीव द्रव्य कारण है। ५ अकारण है॥ निश्चय नय करके छ द्रव्य कर्त्ता है। व्यवहार नय करके एक जीव द्रव्य कर्ता है॥ ५ अकर्ता है। छ द्रव्य में एक आकाश सर्व व्यापी है। ५ द्रव्य लोक व्यापी है। इस रीतिसे छओं द्रव्य एक क्षेत्रमें इकट्ठे रहते हैं परन्तु एक दूसरे में मिले नहीं इसलिये इनको जुदे २ द्रव्य कहे॥ अन इन छओं द्रव्यों में आठपक्ष उतार कर दिखाते हैं सो प्रथम आठपक्षे के नाम कहते हैं॥ १ नित्य। २ अनित्य। ३ एक। ४ अनेक। ५ सत्य। ६ असत्य। ७ वक्तव्य।८ अवक्तव्य॥ इन आठों पक्षोंको एक २ द्रव्य में घटाय कर दिखाते हैं सो पहले नित्य, अनित्य, छओं द्रव्यों म जुदी २ उतारते हैं॥ धर्मास्तिकायके चार गुण एक पर्याय अर्थात् स्कन्द ये पाच नित्य हैं। देश प्रदेश, अगुरुलघु, ये तीन पर्याय अनित्य है॥ इसरीति से अधर्मास्तिकायके चार गुण एक पयाय स्कन्द लोक प्रमाण नित्य है॥ देश, प्रदेश, अगुरु, लघु ये तीन पयाय अनित्य है॥ इसरीति से आकाशास्तिकायके चार गुण स्कन्द लोक अलोक प्रमाण नित्य है॥ देश, प्रदेश, अगुरुलघु, ये तीन पर्याय अनित्य है॥ काल द्रव्यके चार गुण

नित्य हैं ॥ पर्याय चारा ही अनित्य है ॥ पुद्गल द्रव्य के चार गुण नित्य हैं। पर्याय सब अनित्य हैं। जीव द्रव्यके चार गुण और तीन पर्याय नित्य हैं ॥ एक अगुरुलघु पर्याय अनित्य है। इस रीतिसे नित्य, अनित्य, पक्ष कहा ॥ अब एक, अनेक, पक्ष कहते हैं ॥ धर्म, अधर्म, द्रव्यका स्कन्ध लोक प्रमाण एक है ॥ गुण, अथवा पर्याय, वा प्रदेश, अनेक, हैं। गुण अनन्ता है, पर्याय अनन्ता है, प्रदेश असंख्याता है,इस रीतिसे आकाश द्रव्य में स्कन्ध लोक अलोक प्रमाण एक हैं ॥ और गुण, पर्याय, प्रदेश, अनेक हैं, क्योंकि गुण अनन्ता, पर्याय अनन्ता, प्रदेश अनन्ता, ऐसे ही काल द्रव्य में वर्तना रूप गुण तो एक हैं। और गुण पर्याय समय अनेक हैं। गुण अनन्ता पर्याय अनन्ता, समय अनन्ता, क्योंकि देखो अतीत अर्थात भूत कालके अनन्ता समय होंगये। और अना गत काल अर्थात् भविष्यत कालके अनन्ते समय होंयगे। वर्तमान कालका एक समय हैं ॥ इसी रीतिसे पुद्गल द्रव्यके परमाणु अनन्ता हैं ॥ एक परमाणुमें अनन्ता गुण और पर्याय है परन्तु सर्व परमाणु में पुद्गलपना एक है ॥ इसी रीतिसे जीव अनन्ता है सो एक २ जीव में असंख्यात प्रदेश हैं । और अनन्ता गुण हैं अनन्ता पर्याय हैं, परन्तु सर्व जीवोंका जीवपना अर्थात् चेतना लक्षण एक सरीखा है। इसरीति से छः द्रव्योंमें एक, अनेक पक्षकही परन्तु इस एक और अनेक पक्षसे जीव द्रव्य में और पुद्गल द्रव्य में अनेक पक्ष तो बनती है परन्तु एक पक्ष नहीं बनती इस लिये जिज्ञासु प्रश्न करता है (प्रश्न) सर्व जीव सरीखा है यह कहना नहीं बनता क्योंकि जुदी व्यवस्थासिद्धी है कि एक जीव तो सिद्ध परमात्मा आनन्दमयी हैं दूसरा संसारी जीव कर्मके वस में पड़ा हुआ दुखी दीखता है तो इस व्यवस्था को जुदी २ देखकर

क्योंकर एक पक्ष घटसक्ति है (उत्तर) भो देवानुप्रिय तेरेको अभी जिन आगमके रहस्यकी खबर नहीं है इसलिये तेरेको ऐसी तर्क उठती है और एक पक्ष समझम नहीं आता इसलिये तेरेको समझाते हैं कि निश्चयनय करके सर्व जीव सिद्ध समान है क्योंकि सर्व जीव कर्म क्षय करके सिद्ध होते हैं इस लिये सर्व जीवकी सत्ता एक है ॥ जो तेरेको ऐसा सन्देह फिर उत्पन्न होय कि सर्व जीवकी सत्ता एक है तो अभव्य मोक्ष क्यों नहीं जाता है ॥ तिस का समाधान ऐसा है कि अभव्यका कर्मवासना है इस लिये उसका स्वभाव पल्टे नहीं परन्तु आठ रुचक प्रदेश सर्व जीवके मुख्य है उन आठ रुचक प्रदेशोंमें कर्मका सयोग नहीं होता वे आठ रुचक प्रदेश सभीक निर्मल है चाहे तो भव्यजीव हों चाहे अभव्य हों ॥ इस लिये उन आठ रुचक प्रदेशोंकी अपेक्षासे नैगम नय वाला निश्चय नय करके उस अभव्य का भी सिद्धके समान मानता है ॥ दूसरा और भी सुनो की सर्व जाव चेतना लक्षण करके एक सरीख्या है इस लिये एक अनेक पक्ष जीवम बनगई ॥ और पुद्गल में भी एक पक्ष इस रीतिसे बनती है कि परमाणु में पुद्गलपना सर्वमे एक है इस लिये पुद्गल में भी एक पक्ष बनता है ॥ अब सत्य असत्य पक्ष भी छओं द्रव्यों में दिखाते हैं ॥ स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल, स्वभाव, करके सत्य है ॥ और पर द्रव्य, परक्षेत्र, परकाल, परभाव, करके असत्य है ॥ इसलिये इस जगह अब द्रव्य क्षेत्र काल भावका स्वरूप दिखाते हैं सो एक २ द्रव्यका जुदा २ समझाते हैं ॥ धर्मास्तिकायका स्वद्रव्य गुण पर्यायका भाजना अर्थात् समुदाय जिस में गुण पर्याय रहे उस को द्रव्य कहना ॥ ऐसे ही अधर्मास्तिकायका स्वद्रव्य गुण पर्यायका भाजन ॥ अथवा आकाशका स्वद्रव्य गुण पर्यायका भाजन। ऐसे ही काल द्रव्यका

और पुद्गल द्रव्यका अथवा जीव द्रव्यका भी स्वद्रव्य जान लेना ॥ अब स्वक्षेत्र कहते हैं । धर्म, अधर्म, द्रव्योंका स्वक्षेत्र असंख्यात प्रदेश है। आकाशका स्वक्षेत्र अनन्ता प्रदेश है। कालका स्वक्षेत्र समय रूप है। पुद्गलका स्वक्षेत्र परमाणु है। जीव द्रव्यका स्वक्षेत्र एक जीवका असंख्याता प्रदेश है। अब छओं द्रव्योंका काल कहते हैं कि स्वकाल अगुरुलघु पर्याय है सोही स्वकाल है सो इस अगुरुलघुका वर्णन तो आगे करेंगे परन्तु इस जगह तो स्वकाल अगुरुलघुको कहा है क्योंकि अगुरुलघुकोही काल कहते हैं इस अगुरुलघुमें ही उत्पाद व्यय होता है सो वो उत्पाद व्यय सब द्रव्यामें होता है इसलिये इस अगुरुल घुको स्व २ कालकहा ॥ अब स्वभाव कहते हैं कि ये छओं द्रव्यों में जो मुख्य गुण अर्थात् जिस गुणसे द्रव्य जाना जाय उसको मुख्य गुण कहते हैं जसे धर्मास्तिकाय में मुख्य गुण चलन साहाय है सोही धर्मास्ति कायका स्व स्वभाव है ॥ ऐसे ही अधर्मास्तिकायमें मुख्य गुण स्थिर करनेका साही अधर्मास्तिकायका स्वभाव है ॥ इसीरीतिसे आकाशमें मुख्य गुण अवगाहना अर्थात् जगह देनेका स्वभाव है ॥ इसीलिये उसका मुख्य स्वभाव अवगाहना दान गुण है ॥ इसी तरह काल द्रव्यका स्वभाव वर्तना लक्षण अर्थात् नया पुराना करना यही स्वस्वभाव है ॥ पुद्गल द्रव्यका मुख्य गुण मिलन बिछरन रूप वही पुद्गलका स्वस्वभाव है ॥ इसरीतिसे जीवका मुख्य गुण ज्ञानादि चेतना लक्षण है सोही जीवका चेतनस्वस्वभाव है । इस छओं द्रव्यामें द्रव्य क्षेत्र काल भाव कहा ॥ इस रीति से स्वद्रव्य स्व क्षेत्र, स्व काल, स्वभाव करके सत्य है ॥ पर द्रव्य, पर क्षेत्र, परकाल, परभाव, करके असत्य है ॥ इस रीतिसे सत्य, असत्य पक्ष कहा ॥ अब वक्तव्य, अवक्तव्य, पक्षको दिखाते हैं कि ॥ छ द्रव्यमें अनन्त गुण पर्याय वक्तव्य कहता वचनसे कहा जाता है ॥

और इन्हीं छओं द्रव्योंमें अनन्ता पर्याय अवक्तव्य कहता वचनसे कहनेमें आते॥ऐसा इन छओं द्रव्योंमें अनन्त गुण पर्याय कहने के लायक और न कहनेके लायक हैं सो इस अगाह निगम प्रक्रिया से श्री उपाध्यायजी ने इस ग्रन्थ में वर्णन किया है ऐसी प्रक्रियाको दिखाकर पीछे से लौकिक दृष्टान्तोंसे घटाय कर पाठकगणोंको दिखाते हैं कि श्रीउपाध्यायजीने वक्तव्य अवक्तव्यपना दिखानेके ऊपर इस रीति से लिखा कि केवली भगवान् ने सर्व भाव देखा परन्तु उस वचनसे अनन्तमें भाग वक्तव्य कहता अर्थात् कहा जैसा ज्ञान वचनसे कहा उसके अनन्त में भाग गण धरोंने सूत्र कथन किया ॥ उस कथन किये से भी असंख्यात में भाग अर्थात् वर्तमान काल में रहा इस रीतिसे आगमसारमें लिखा है ॥ अब हमने जो ऊपर युक्ति दिखा लिखाया सो युक्ति दिखाते हैं कि जैसे किसी जगह अच्छे २ गाने वाले पुरुष अपना गाना कर रहे होय उस गानेमें कोई गाना समझने वाला भी बैठा होय उस समझने वाले पुरुषसे कोई दूसरा पुरुष पूछे कि इस गानेमें आप अच्छा तरह समझते हो उस मुवाफिक समझ मुजब मेरेको भी कह कर समझा दीजिये तो वो पुरुष गानेके समझने वाला वचन द्वारा राग रागनी स्वरतान मान आदि जो वचन से कहनेमें उसको वचनसे कह कर समझाय देगा परन्तु जैसा उस पुरुषने गाना सुनकर जाना है वैसा वचनसे नहीं कह सकता है तैसेही अवक्तव्य पक्षका जानना क्या कि जैसा बुद्धिमान पुरुष अपनी बुद्धिसे जानता है वैसा वचनसे नहीं कह सकता ॥ इस रीतिसे यह आठ पक्ष सामान्य रूपसे कहे ॥ अब इन्हीं आठ पक्षोंका उपाध्यायजी श्रीदेवचन्द्रजी महाराज विस्तार पूर्वक वर्णन करते हैं कि ॥ नित्य अनित्य इन दो पक्षोंका विचार समझनेके

वास्ते चौभंगी कही है। और अनेक इन दो पक्षोंसे नयका स्वरूप दिखावेंगे। और सत्य असत्य पक्षसे सप्तभंगी का स्वरूप दिखावेंगे। वक्तव्य अवक्तव्य से प्रमाण आदि कहेंगे इसलिये इन आठ पक्षकी ही विस्तार पूर्वक प्रक्रिया लिखते हैं कि। प्रथम नित्य, अनित्य, पक्ष से चौभंगी पैदा होती है सो उस चौभंगीको दिखाते हैं। १ अनादि अनन्त। २ अनादि सान्त। ३ सादीसांत। सादि अनन्त। यह चार भांगे हुए इन चारों भांगों का अर्थ करते हैं। अनादि अनन्त उस को कहते हैं कि जिसकी आदि भी नहीं और अन्त भी नहीं। अनादि सान्त उसको कहते हैं कि जिस की आदि तो है नहीं और अन्त है। सादिसांत उसको कहते हैं कि जिसकी आदि भी है और अन्त भी है। सादिअनन्त उसको कहते हैं कि जिसकी आदि तो है और अन्त नहीं है। इस रीति से इन चारो भांगा का अर्थ हुआ। अब इन चारों भांगों को छ द्रव्योंमें उतार कर दिखाते हैं सो प्रथम जीवमें चार भांग इस तरह से उतारते हैं। ज्ञानादि गुण जीवका अनादि अनन्त है। और नित्य है। और भव्य जीवके कर्मका संयोग अर्थात् सम्बन्ध अनादि सांत है। क्योंकि कर्म लगने की तो खबर है नहीं कि जीव को कर्म किस काल में लगे थे। और जब सिद्धि को प्राप्त होता है तब कर्म सब छूट जाते हैं इसलिये अनादिसांत भांगा जीवमें हुआ। और जो देवता नारकी (नरक), तिर्यंचे (पशु पक्षी) आदि, मनुष्य, अर्थात् यह चार गतिकी ८४ लक्ष जीव योनि में जन्म लेना और मरणका होना इसलिये सादीसांत है क्योंकि उस जन्म मरण का आदि और अन्त दोनों हैं। और जो जीव कर्म से मुक्त अर्थात् अलग होकर मोक्षमें प्राप्ति होता है। वो जीव सादि अनन्त

भागेस है क्योंकि मालम गया समझा ना आदि है फिर इस ससारम कभपि न आवगा इमलिये उस आत्मा मादि अन्त भागा हुआ । इस रीति से नीवम चौभगा कहा । अब धर्मास्ति कायमें चौभगा कहते हैं । धर्मास्तिकायमें चार गुण और लोक प्रमाण स्कन्ध ये पाच चीज अनादि अनन्त हैं । और अनादिसात भागा इसमें नहीं है । देश, प्रदेश, अगुरु लघु य सादिसात भागे में है । और सिद्ध जीवा मे जो धर्मास्तिकाय के प्रदेश लगे हुए हैं व सादिअनन्त भागस है । य धर्मास्तिकायम चार भागे य० । इसी तरह अधर्मास्तिकायम और आकाशम समझ लेना ॥ पुद्गलमें चार गुण अनादि अनन्त है । और पुद्गलका स्कन्धदेशादि सान्त भाग में है । दो भा । पुद्गलमें पाये है नहीं । काल द्रव्यमें चार गुण अनादि अनन्त है और पर्यायमें अतीत अर्थात् भूतकाल अनादिसात है । वत्तमान काल सादिसाव है । अनागत अर्थात् भविष्यत्काल सादि अनन्त है । इस रीति स पाच द्रव्योंम चौभगा कहा अब द्रव्य भाव काल भावमें चौभगा कहते हैं जीव द्रव्यम द्रव्यज्ञानादि गुण अनादि अनन्त है । जीवका प्रदेश भी जीवका क्षेत्र है सो सादिसात है । जीवका स्व काल अगुरु लघुपर्याय सो सादि अनन्त है परन्तु अगुरु लघु का पैदा होना वा विनाश होना सो सादिसात है । जीवका स्वभाव गुण अर्थात् ज्ञान सो अनादिअनन्त है इस रीति से धर्मास्तिकाय का स्व द्रव्य अनादि अनन्त है स्वक्षेत्र असख्यात प्रदेश लोक प्रमाण व सादि सात है । स्वकाल कहता अगुरु लघु करके सो अनादि अनन्त है । परन्तु उत्पादव्यय अपना स सादिसात है । और स्वभाव गुण चलन सहाय आदि अनादि अनन्त है परन्तु देश, प्रदेश की अपेक्षासे सादिसात है ॥ इस रीति से

अधर्मास्तिकायमें समझ लेना। आकाशास्तिकायमें स्वद्रव्य अनादि अनन्त है। स्वक्षेत्र अनन्त प्रदेश लोकालोक प्रमाणसे अनादि अनन्त है। स्वकाल अगुरु लघु गुण अनादि अनन्त है॥ परन्तु उत्पादव्ययकी अपेक्षा से सादिसान्त है। सो आकाश के दो भेद हैं १ लोक आकाश। २ अलोक आकाश। सो लोक आकाशका द्रव्य सादिसान्त है अलोक आकाश द्रव्य सादि अनन्त है। इस जगह कोई ऐसी शंका करे कि अलोक आकाश का सादि क्यों कहा क्योंकि आकाशका तो कहीं आदि है नहीं तिसका समाधान ऐसा है कि इस जगह लोक आकाशका अन्त है उस जगहसे अलोक आकाशकी आदि है इसलिये सादी अनन्त कहा॥ अब कालमें कहते हैं कि कालका स्वद्रव्य वर्तना गुणादिसे अनादि अनन्त है॥स्वक्षेत्र जो समय सादि सान्त है॥ स्वकाल जो अगुरु लघु सो तो अनादि अनन्त है॥ परन्तु उत्पाद व्ययकी अपेक्षासे सादि सान्त है॥ स्वभाव गुण वर्तना लक्षण सो अनादि अनन्त है॥ परन्तु अतीत अर्थात् भूतकाल अनादि सान्त है॥ वर्तमान समय सादि सान्त है॥ अनागत अर्थात् भविष्यत काल सादी अनन्त है॥ इस रीतिसे कालमें चौभंगी कही॥ अब पुद्गलमें चौभंगी कहते हैं॥ पुद्गल द्रव्य में द्रव्यपना अर्थात् गुणादि अनादि अनन्त है॥ स्वक्षेत्र परमाणु सो सादी सान्त है॥ स्वकाल अगुरु लघु गुण सो तो अनादि अनन्त है॥ परन्तु उत्पादव्ययकी अपेक्षा से सादी सान्त है॥ स्वभाव गुण मिलन बिखरनादि तो अनादि इस रीतिसे छओ द्रव्यों में द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव करके चौभंगी कही॥ अब छओ द्रव्यों में जो परस्पर सम्बन्ध है उसकी चौभंगी कहते हैं॥ प्रथम आकाश द्रव्य है इसके दो भेद हैं जिसमें अलोक

आकाश से तो कोई द्रव्यका सम्बन्ध है नहीं क्योंकि उस अलोक आकाश में कोई द्रव्यही नहीं तब सम्बन्ध किसका होय इस लिये लोक आकाशका सम्बन्ध कहते हैं कि । धर्म द्रव्य, अधम द्रव्य, इन दोनों द्रव्योंका आकाश से अनादि अनन्त सम्बन्ध है क्यों कि लोक आकाश के एक २ प्रदेश में धर्म द्रव्यका एक प्रदेश ऐसे ही अधर्म द्रव्यका प्रदेश आपस में मिला हुआ है सो किस वक्त में य अलग होगा ऐसा कोई नहीं कह सक्ता इस लिये अनादि अनन्त है ॥ और लोक आकाश क्षेत्र और जीव द्रव्यका अनादि अनन्त सम्बन्ध है ॥ परन्तु जो संसारी जीव कर्म सहित है उस जीवका और लोकाकाश क्षेत्रका सादि सान्त सम्बन्ध है ॥ सिद्धजीव और सिद्ध क्षेत्रका आकाश प्रदेशका सादी अनन्त सम्बन्ध है ॥ पुद्गल द्रव्यका आकाश मे अनादि अनन्त सम्बन्ध है ॥ परन्तु आकाश प्रदेश और पुद्गल परमाणुका सादी सान्त सम्बन्ध है । इस रीतिसे आकाशका सम्बन्ध कहा ॥ जिस रीतिसे आकाशका सर्व द्रव्यों से सम्बन्ध कहा इसी तरह धर्म द्रव्य, अधम, द्रव्य, का भी सम्बन्ध जान लेना ॥ अब जीव और पुद्गलका सम्बन्ध कहते हैं ॥ अभव्य जीवसे पुद्गलका सम्बन्ध अनादि अनन्त है क्यों कि अभव्यका कर्मरूप पुद्गल कदापि नहीं छूटेगा इस लिये अनादि अनन्त है ॥ और भव्यजीवके कर्मरूप पुद्गलसे अनादि सान्त सम्बन्ध है क्योंकि जब भव्य जीव यथावत् क्रिया करके कर्माको छुटावेगा तब सर्व कर्म अनादिका सान्त अर्थात् छूटेगा और मोक्ष म जायगा इस लिये अनादि सान्त है॥ इस रीतिसे सम्बन्ध कहा ॥ अब थोडासी परिणामकी प्रक्रिया दिखाते हैं ॥ निश्चय नय करके छओ द्रव्य स्वभाव परिणाम में परिणमे है इसलिये परिणामी है सो परिणामी पना शाश्वता अर्थात् अनादि

अनन्त है ॥ परन्तु जीव पुद्गल इन दो द्रव्योंमें मिलन सम्बन्ध भाव है सो पर परणामी है ॥ परन्तु परिणामीपना अभव्यके तो अनादि अनन्त है ॥ और भव्यजीवके अनादि सान्त है ॥ और पुद्गल में परिणामीपना सत्ता करके अनादि अनन्त है ॥ परन्तु मिलना और जुदा होना तिस करके सादि सान्त है ॥ और जीव पुद्गल दोना मिले हुए सक्रिय हैं ॥ परन्तु जीव पुद्गल कर्मसे रहित अर्थात् अलग होवे तब जीव अक्रिय है ॥ और पुद्गल द्रव्य सदा सक्रिय है ॥ इस रीतिसे नित्य अनित्य में चौभंगी कही ॥ अब एक, अनेक, पक्षसे निश्चय (नि सन्देह) ज्ञान होनेके वास्ते नयका स्वरूप कहते हैं क्योंकि सर्व द्रव्यों में अनेक स्वभाव है सो एक वचन से कहने में आवे नहीं इसलिये नय कहनाही अवश्य है सो इन सातों नयके मूल से तो दो भेद है ॥ १ द्रव्यार्थिक । २ पर्यायार्थिक । पहले द्रव्यार्थिकका अर्थ करते हैं कि ॥ उत्पाद वय पर्याय गौणपने करके और द्रव्यका गुण सत्तामें है उस सत्ताकोही ग्रहण करे उसका नाम द्रव्यार्थिक है सो इस द्रव्यार्थिकके (१०) भेद हैं सोही दिखाते हैं ॥ १ नित्य द्रव्यार्थिक सर्व द्रव्य नित्य है ॥ २ अगुरु लघु क्षेत्र की अपेक्षा न करे एक मूल गुणको इकट्ठा ग्रहण करे सो एक द्रव्यार्थिक जैसे ज्ञानादिक गुण सर्व जीवका एक सरीखा है इस लिये सर्व जीव एक समान है ॥ ३ स्वय द्रव्यार्थिकको ग्रहण करे सो सत्य द्रव्यार्थिक जैसे (सत् लक्षण द्रव्यम्) ॥ ४ जो गुण कहने में आवे उस गुणको अंगी कार करके कहे सो वक्तव्य द्रव्यार्थिक ॥ ५ अशुद्ध द्रव्यार्थिक जो अपना आत्माको अज्ञानी कहना कि मेरी आत्मा अज्ञानी है ॥ ६ सर्व द्रव्य गुण पर्याय सहित है इसका नाम अन्वय द्रव्यार्थिक है ७ सर्व द्रव्य मूल सत्ता

एक है इसका नाम परम द्रव्यार्थिक है ॥ ८ सर्व जीवका आठ रुचक प्रदेश निर्मल है इसका नाम शुद्ध द्रव्यार्थिक है ॥ ९ जीव का असंख्याता प्रदेश एक समान है इसका नाम सत्ता द्रव्यार्थिक है ॥ १० गुण गुणी द्रव्य सो एक है आत्मा ज्ञान रूप है इसका नाम परम भाव ग्राहक द्रव्यार्थिक है ॥ इस रीतिसे द्रव्यार्थके दस भेद कहे ॥ अब पर्यायार्थिक नयका अर्थ करते हैं कि पर्यायको ग्रहण करे उसको पर्यायार्थिक कहना सो इस पर्यायार्थिकके (६) भेद है ॥ १ प्रथम द्रव्यपना अथवा सिध्द पना ॥ २ द्रव्य व्यंजन पर्याय अपना प्रदेश समान है ॥ ३ गुण पर्याय यह एक गुणमें अनेकता होय जैसे धर्मादि द्रव्य अपने चलनादि गुणसे अनेक जीव पुद्गलका सहाय करे है ॥ ४ गुण व्यंजन पर्याय यह एक गुणके अनेक भेद हैं ॥ ५ स्वभाव पर्याय सो अगुरु लघु यह पर्याय सब द्रव्य में हैं ॥ ६ व्यभाव पर्याय जीव और पुद्गलमें हैं क्योंकि व्यभाव पर्याय हीन सहा स्कन्द सब बनता है ॥ इस रीतिसे (६) पर्यायार्थिकके भेद कहे ॥ इससे अलाव दूसरी रीतिसे भी पर्यायार्थिकके (६) भेद कहे हैं सो भी दिखाते हैं । १ अनादि नित्य पर्याय जैसे मेरू (सुमेर) आदि है । २ सादी नित्य पर्याय जैसे सिध्दपना है । ३ अनित्य पर्याय जैसे समय २ में द्रव्य उपजे हैं और निनसे हैं । ४ अशुद्ध नित्य पर्याय जैसे जन्म मरण होता है । ५ उपाधी पर्याय जीव कर्मका सम्बन्ध है । ६ शुध्द पर्याय सब द्रव्यका मूल पर्याय (अगुरु लघु पर्यायको मूल पर्याय कहते हैं) एक सरीखा है । इस रीति से पर्यायार्थिकका स्वरूप कहा । अब प्रथम (७) नयके नाम कहते हैं । १ नैगम नय । २ संग्रहनय । ३ व्यवहार नय । ऋजु सूत्रनय । ५ शब्द नय । ६ समभिरूढनय । ७ एवं भूतनय । इस रीतिसे

सातों नयस नामकहे ॥ अब इन नयोंका विस्तारसे स्वरूप दिखाते हैं ॥ प्रथम नैगम नयका ऐसा अर्थ होता है कि नहीं है गम जिसमें उसका नाम नैगम है ॥ यह नय एक अंश गुण ऊपजे अथवा आरोपाग्निवा सकल्प मात्र करनेसे वस्तुको मान लेता है । इस लिये इस जगह दृष्टान्त दिखाते हैं कि कोई मनुष्य अपने दिल में विचारने लगा कि (पायली) लाऊ मारवाडमे (धान मापना अर्थात् तोलना उस एक काष्टके बरतनसे होता है उसका नाम पायली है) तब वो मनुष्य काष्ट लेनेके वास्ते जंगल अर्थात् वनमें गया उस वनमें जानेवाले मनुष्यको सामने एक आता हुआ मनुष्य मिला सो उसने उससे पूछा कि तुम कहा जाते हो तब उस जानेवाले मनुष्यने कहा कि मैं पायली लेनेको जाता हू ऐसा कहा तो इस जगह विचारना चाहिये कि जिस पुरुषने पायली लेनेका नाम कहा कि पायली लेनेको जाता हू तो पायली उस जगह कुछ बनी हुई नहीं रक्खी केवल काष्ट लेनेकेही वास्ते जाता है सो काष्ट का भी ठिकाना नहीं कि किस जगहमे काष्ट लावेगा परन्तु मनमें ऐसा चिन्तवन किया कि मैं पायली लाऊ इस लिये उसने पायली कहा ॥ इसरीतिसे नयगम नयवाला मानता है ॥ क्योंकि देखो इस नैगम नयसेही सर्वजीव सिद्धके समान हैं क्योंकि सर्वजीवके आठ रुचक प्रदेश निर्मल सिद्धके समान हैं इस लिये नैगम नय वाला सर्वजीवोंको सिद्ध मानता है ॥ सो नैगम नयके तीन भेद हैं ॥ १ अतीत अर्थात् भूतकालकी नैगम ॥ २ अनागत अर्थात् भविष्यन्‌कालकी नैगम ॥ ३ वर्तमान नैगम ॥ इस रीतिसे नैगम नय कहा ॥ अब संग्रह नय कहते हैं कि वस्तुको ग्रहण करे सो संग्रह । अथवा एक अंश अवयवका नाम लेनेसे सर्व वस्तुको ग्रहण करे ॥ जैसे १ द्रव्य १ अंश गुणका नाम लिया तब जितना उस

द्रव्यके गुण पर्याय थे मा सबका ग्रहण कर लिय उसका नाम संग्रह है ॥ इस संग्रहनयका दृष्टान्त भी देकर दिखाते हैं ॥ जैसे कोई बडा आदमी अपने घरके दरवाजे पर बैठा हुआ नौकरसे कहे कि दातन लाओ तब वो नौकर दातन ऐसा शब्द सुनकर दांतोंके मांजनेका मंजन, कूची, जाभी, पानीका लोटा, रुमाल, आदिसब चीजें ले आया ॥ तो इस जगह विचारना चाहिये कि उस बडे आदमीन तो एक दातन मांगा था परन्तु जो दातन करनेकी सामग्री था वह सबका संग्रह हो गया ॥ वैसेही द्रव्य ऐसा नाम कहनेसे द्रव्यके जो गुण पर्याय थे सबका संग्रह हो गया ॥ इस रीतिसे संग्रह नयकी व्यवस्था कहीं सो संग्रह नयके दो भेद हैं ॥ १ सामान्य संग्रह । २ विशेष संग्रह । सामान्य संग्रह उसको कहते हैं कि द्रव्य ऐसा नाम लेनेसे जीव अजीव किसीका भेद न माने और सबको शामिलही मान लेय ॥ विशेष संग्रह उसको कहते हैं कि किसीने जीव द्रव्य ऐसा कहा तो अजीव द्रव्य सर्व न्यारा करके एक जीव द्रव्यकेही गुण पर्यायको ग्रहण करे ॥ इस रीतिसे संग्रह नय कहा ॥ अब व्यवहार नय कहते हैं ॥ बाह्य स्वरूपको देखकर भेद करे क्योंकि व्यवहार नय जैसा जिसका व्यवहार देखे वैसाही तिसका स्वरूप कहे अन्तरंग स्वरूपको न माने इसलिये इस व्यवहार नयमें आचार क्रियाको देखकर अन्तरंगके परिणामको न जाने अथात् न देखे ॥ और नैगम तथा संग्रह नय वाला अन्तरंग प्रणामको ग्रहण करता है ॥ और व्यवहार नयवाला केवल करणीको देखता है ॥ इस लिये नैगम संग्रह नय वाला तो जावकी अनेक व्यवस्था है तो भी सत्ताको ग्रहण करके एक रूप कहताहै॥ और व्यवहार नयवाला जीवको अनेक व्यवस्था मानता है सोही दिखाते हैं कि ॥ प्रथम व्यवहार नयवाला जीवके

दो भेद मानता है ॥ १ सिद्ध । २ ससारी । उस ससारी जीवके भी दो भेद मानता ॥ १ अयोगी चवदमें गुण ठाणे वाला । २ सयोगी । उस सयोगीके भी दो भेद हैं ॥ १ केवली तेरवें गुण ठाणेवाला । २ छद्मस्थ । उसछद्मस्थके भी दो भेद हैं ॥ १ क्षीण मोही बारमें गुणठानेवाला । २उपसान्त मोहवाला । उस उपसान्त मोहवालेके भी दो भेद हैं ॥ १ अकपाई अर्थात् क्रोध मान, माया, केरहित इग्यारमें गुणठानेवाला । २ सकपाई अर्थात् सूक्ष्म लोभ वाला । उस सकपाईके भी भेद हैं ॥ १ श्रेणी प्रति पन्न (श्रेणीका भेद अगाडी खुलाशा कहेंगे) अर्थात् ऊपरको चढनेवाला । २ श्रेणी करके रहित अर्थात् न चढनेवाला । उस श्रेणी रहितके भी दो भेद हैं ॥ १ अप्रमादी । २प्रमादी । उस प्रमादीके भी दो भेद हैं ॥ १ सर्वविरातिवाला साधू । २ देश विरतिवाला श्रावक । उस देश विरतिवाले श्रावकके भी दो भेद हैं ॥ १ विरतिपरणामवाला । २ अविरति परणामवाला । उस अविरति परणामवालेके भी दो भेद हैं ॥ १ अविरति समकित दृष्टि । २ मिथ्यात्वी । उस मिथ्यात्वीके भी दो भेद हैं ॥ १ अभव्य । २ भव्य । उस भव्यके भी दो भेद हैं ॥ १ ग्रन्थिकरके रहित । २ ग्रन्थि करके सहित । इस रीतिसे जैसा जीव देखे तैसाही कहे ॥ अब इसी व्यवहार नयसे पुद्गलका भी भेद दिखाते हैं कि ॥ पुद्गल द्रव्यके दो भेद हैं ॥ १ परमाणु । २ स्कन्ध । उस स्कन्धके भी दो भेद हैं ॥ १ जीव सहित अर्थात् जीवसे कर्म रूप पुद्गल लगा हुआ है । २ जीव रहित । जीव सहित स्कन्धके भी दो भेद हैं । १ सूक्ष्म । २ बादर । यहां वर्गणाका विचार लिखते हैं कि पुद्गलकी वर्गणा (८) है सो उनके नाम कहते हैं । १ औदारिक वर्गणा । २ वैक्रिय वर्गणा । ३ आहारकवर्गणा । ४ तेजसवर्गणा । ५ भाषावर्गणा । ६ उस्वासवर्गणा । ७

मनोवर्गणा । ८ कामण वर्गणा । यह आठ वर्गणाके नाम यह अब इनकी व्यवस्था कहते हैं कि वर्गणा किसरीतिसे बनती है और कितन परमाणु इकट्ठ होनेसे वर्गणा होती है सो हम दिखाते हैं। दो परमाणु इकट्ठा (भेला) होता है तब द्विगुणक स्कन्द बनता है। तीन परमाणुके इकट्ठा होय तब त्रिगुणक स्कन्ध होय ॥ चार मिले तो चतुर्गुणक स्कन्ध होय । ऐसही सख्यात परमाणुके इकट्ठे होय तो सख्यात परमाणुकार स्कन्ध बने । ऐसेही असख्यात परमाणु मिले तो असख्यात परमाणुकार स्कन्ध होय । अनन्ता परमाणु मिल तो अनन्ता परमाणुका स्कन्ध होय । यह अजीव स्कन्ध जीवका ग्रहण करनेके योग्य नहीं है । क्योंकि अभव्यसे अनन्त गुणा परमाणु इकट्ठा होय तब औदारिक वर्गणा लेनेके योग्य होवे जितने औदारिक वर्गणामें परमाणु इकट्ठ होय उनमे अनन्त गुण परमाणु इकट्ठे होय तब वैक्रियवर्गणा लेनेके योग्य होय । और वैक्रियवर्गणामें जितने परमाणु हैं उस वर्गणामें अनन्त गुण परमाणु इकट्ठ होय तब आहारक वर्गणा होय। इस रीतिसे एक २ वर्गणासे अनन्त २ गुणा परमाणु ज्यादा २ मिलते हुए मनोवर्गणामें इकट्ठे हुए हैं उस मनोवर्गणामेंभी अनन्त गुणे परमाणु मिले तब कारमान वर्गणा होय । इस रीतिसे वर्गणाका विचार कहा। अब इन वर्गणामें भी दो भेद हैं। ॥ १ बादर । २ सूक्ष्म । पेश्तर बादर वर्गणाका कहते हैं कि ॥ १ औदारिक । २ वैक्रिय । ३ आहारक । ४ तेजस । यह चार वर्गणा बादर हैं॥ इन वर्गणामें ५ वर्ण, २ गन्ध ५ रस ८ स्पर्श यह (२०) गुणहैं और चार वर्गणा सूक्ष्म हैं १भाषा २उश्वास ३मन४ कारमान। इन चार वर्गणामें५ वर्ण,२ गन्ध, ५ रस, ४ स्पर्श, यह (१६) गुण हैं ॥ और एक परमाणुमें । १ वर्ण । १ गन्ध । १ रस । २ स्पर्श ।

यह पाच गुण है ॥ इस रीतिसे पुद्गलका व्यवस्था व्यवहारनय वाला मानता है ॥ और व्यवहारनय वाला व्यवहारके भी (६) भेद कहता है सोही दिखाते हैं ॥ १ शुद्ध व्यवहार । २ अशुद्ध व्यवहार । ३ शुभ व्यवहार । ४ अशुभ व्यवहार । ५ उपचारित व्यवहार । ६ अनुप चारित व्यवहार । ये व्यवहारके नाम कह अब इनका अर्थ करते हैं ॥ शुद्ध व्यवहार उसको कहते हैं कि नीचेके गुणठानेसे ऊपरका गुण ठाना लेय अर्थात् नीचे से ऊपरको चढे किसम कि आत्मगुणमे यह शुध्द व्यवहार है अथवा जिज्ञासुक वास्ते ज्ञान दर्शन चारित्र जुदा २ कह कर समझाव सो भी यह शुध्द व्यवहार है ॥ अब अशुध्द व्यवहार कहते हैं कि जीवमे अज्ञानराग द्वेष है सो अशुध्दपना है इस अशुध्दकही चार भेद होते हैं ॥ (नोट) इस अशुध्द व्यवहारको शामिल गिननेस (६) भेद होते हैं नहीं तो शुध्द अशुध्द दो भेद तो मुख्य है और शुभ अशुभ उपचरित अनुपचारित यह चार अशुध्दके अन्तरगत हैं इस लिय ५ भेद व्यवहारके होते हैं परन्तु इस जगह जैसा इस आगमसारमे लिखा है वैसाही हमको कहना अवश्य है सो इसका विशेष निर्णय हमारा किया हुआ (द्रव्य अनुभव रत्नाकर) मे देखो वो ग्रन्थ किसी कारणसे अभी पूर्ण नहीं हुआ क्यो कि बीच २ मे अवश्य प्रयोजनसे अन्य कई ग्रन्थ समाप्त होगये हैं और उन ग्रन्थोंमे इस द्रव्य अनुभव रत्नाकरका नाम लिखा है इस लिये इस ग्रन्थमे मिती सम्वत पीछेसे दिया जायगा इस लिये जो कोई पाठकगण सन्देह करे कि ग्रन्थ तो पीछसे रचा और साक्षी पहतर देदीना इस सन्देह दूर करनेके वास्ते इतना नोटमे लिखना पडा)॥ अब तीसरा शुभ व्यवहार कहतहैं कि जो पुण्यरूप क्रियाका करना सो शुभ व्यवहारहै ४अशुभ व्यवहार उसको कहतेहैं

कि जो पापरूप कियाका करना सो अशुभ व्यवहारहै॥५ उपचरित व्यवहार उसको कहते हैं कि यह कारण रूप धन कुटुम्ब घर प्रत्यक्ष अपनेसे जुदा है परन्तु जीव अज्ञान दशामें होकर अपना जानता है कि यह मेरा है इसलिये इसको उपचरित व्यवहार कहते हैं ॥ ६ अनुपचरित व्यवहार उसको कहते हैं कि शरीर आदिक परवस्तु यद्यपि जीवसे शुद्ध निश्चयनयसे जुदा है परन्तु परणामिक भाव लोलपीपनेसे अथवा इकट्ठा मिलनेसे तदात्म भावको प्राप्त हुआ है इस लिये अपना करके मानता है इस लिये इसको अनुपचरित व्यवहार कहते हैं ॥ इस रीतिसे व्यवहारनयका स्वरूप कहा ॥ अब ऋजु सूत्रनयका स्वरूप कहते हैं ॥ अतीत अर्थात् भूतकाल और अनागत अर्थात् भविष्यत काल इन दोनों कालोंकी अपेक्षा न करे और वर्तमान कालमें जिस वस्तुमें जैसा गुणपरिणमें अथवा वर्तेतिस वस्तुको वैसीही माने ऋजु सूत्रनयमें केवल वर्तमान परिणामकी अपेक्षा है न किभूत भविष्यतकी अपेक्षा क्यों कि देखो जैसे कोई जीव गृहस्थ अवस्थामें गहना कपडा श्रृंगार सहित बैठा हुआ है परन्तु अन्त रग परिणाम साधूके समान अर्थात् इन्द्रियोंके विषयसे अलग होकर आत्मगुणके चिन्तवनमें लग रहा है तो उस जीवको ऋजु सूत्रनय वाला साधू अर्थात् त्यागी कहेगा॥और जो जीव साधूका भेष अर्थात् ओघा मुख पत्ती नंगे पग और नंगे शिर लोचादि किये हुएहै परन्तु उसके अन्तरंगचित्तमें इन्द्रियोंके विषय भोगनेकी अभिलाषा है उसको ऋजु सूत्रनयवाला अव्रत्ती अपचखाणी ग्रहस्थी कहेगा न कि साधुका भेष देख कर साधु कहेगा ॥ इस ऋजु सूत्रनयमें केवल वर्तमानकी अपेक्षा है ॥ इस ऋजु सूत्रनयके दो भेद हैं ॥ १ सूक्ष्म ऋजु सूत्र । २ स्थूल ऋजु सूत्र । सो सूक्ष्म ऋजु सूत्र वाला तो एक

वर्तमान समयमें जैसा परिणाम होय। वैसाही माने। और दूसरा स्थूल ऋजु सूत्रनय वाला बाह्य परिणाम रूप वृत्तीको माने। परन्तु दोनोमें केवल वर्तमान कालकीही अपेक्षा मानताहै नाकि भूत भविष्यत कालकी अपेक्षा। इस रीतिसे ऋजु सूत्रनय कहा। अब शब्द नयका स्वरूप कहते हैं कि शब्द अर्थात् वचनसे कहनेमें आये उसका नाम शब्दनय है क्यों कि शब्दनयमें एक तो व्याकरणका शब्द। २ भाषाका शब्द अर्थात् जो वचनसे कहनेमें आवे और वस्तु गुणवन्त होय अथवा निर्गुण होय और वचनसे नाम करके बोलनेमें आवे वो शब्दनयमें है। इस शब्दनयके चार भेद हैं। १ नाम। २ स्थापना। ३ द्रव्य। ४ भाव। इन चार भेदकोही जिन मतमें निक्षेपा कहते हैं इस लिये इस शब्दनयमें अन्तर्गत चार भेद निक्षेपा रूप हैं तिनका विशेष करके विचार कहते हैं। प्रथम नाम निक्षेपा कहते हैं॥ जिस वस्तुका आकार गुण न होय और नाम करके बोलनेमें आवे उसका नाम निक्षेपा है क्यों कि देखो जैसे लड़के लोग लकड़ीको लेकर दोनों पगोंके बीचमें करके आवाज देते हैं कि हटजाओ हमारा घोड़ा आता है ऐसा वचन बोलते हैं परन्तु उन लड़कोंके पासमें कोई घोड़के आकारकी वस्तु घोड़ेका गुण नहीं केवल नाम मात्र वचनसे उच्चारण करते हैं इस लिये वो लकड़ीका टुकड़ा नाम घोड़ा है॥ अथवा कोई पुरुष कालीडोरी रस्तेमें गेर कर किसीसे कहे कि साप (सर्प) है तो उस सापका नाम श्रवण करनेसे दूसरे मनुष्यको भय लगता है परन्तु उस काली डोरीमें सर्पका आकार और गुण कोई नहीं परन्तु नाम सर्प होनेसेही भयका कारण होगया इस लिये वो नाम सर्प है इसका विस्तार आगे भी किंचित् कहेंगे। इस रीति से नाम निक्षेपा कहा। अब स्थापना निक्षेपाका वर्णन

हिंसा नहीं लगती है इस मूर्ति विषयका वर्णन विस्तार मे देखना होय तो हमारा किया हुआ (स्याद्वादानुभवरत्नाकर) के तीसरे प्रश्नके उत्तरमें विस्तार पूर्वक लिखा है वहां से देखो और जो कितनेही जिन आगमके अजान और संशय मिथ्यात्व वाले जो इस मूर्ति पूजनमें अल्प पाप और बहुत निर्जरा मानते हैं उनका भी अज्ञान दूर करने के वास्ते उसी ग्रन्थ के चतुर्थ प्रश्न के उत्तरमें पूजन की विधी कह कर एकान्त निर्जरा ठहराई है सो भी वहां से देखो इसलिये स्थापनारूप मूर्त्ति को नहीं मानता है या विराधक अर्थात् जिनाज्ञाके बाहर है क्योंकि जिसने स्थापना निक्षेपा न माना तिसने द्रव्य भाव न माना जब द्रव्य भाव न माना तो ३ निक्षेपा न माने जब तीन निक्षेपा न माने तो सिद्धांत भी न माने । जब सिद्धान्त न माना तो जिन आज्ञासे आप ही बाहर होगया ॥ इस रीति से स्थापना निक्षेपा कहा । अब द्रव्य निक्षेपेका वर्णन करते हैं कि जिसका नाम होय और आकार गुण होय और लक्षण मिले परन्तु आतम उपयोग न मिले वो द्रव्य निक्षेपा है । क्योंकि देखो जैसे जीव स्वरूप जाने विना द्रव्य जीव है यह प्रत्यक्ष देखनेमें आता है कि मनुष्यकेसा शरीर आख नाक कान शकल लक्षण आदि दीखता है परन्तु अकल अर्थात् बुद्धि न होनेसे उस को लोग कहते हैं कि विना सींग पूंछका पशु है एक देखने मात्र मनुष्य दीखता है क्योंकि इसमें चाल चाल बैठक उठक बड़े छोटे पनेका विचार न होने से पशु समान है । इस रीति से उपयोग विना जो वस्तु है सो द्रव्य है ऐसा शास्त्रों मे भी कहा है (अणुव उगोदव) यह वचन अनुयोगद्वार सूत्र मे कहा है और शास्त्रोंमें ऐसाभी कहतेहैं कि । पद अक्षर मात्रा शुद्ध उच्चारण

करे अथवा सिद्धान्तको वाचे वा पूछ और अर्थ करे और गुरु गुरुसे श्रद्धा रक्खे तो भी निश्चय सत्ता जाने विना सर्व द्रव्य निक्षेपा में हैं ॥ इसलिये भाव विना द्रव्यका जो करना है सो सब पुण्य बन्धनका हेतु है मोक्षका हेतु नहीं इस लिये जो कोई आत्म स्वरूप जाने विना करनी रूप कष्ट तपस्या करते हैं और जीव अजीवकी सत्ता नहीं जानते उनके वास्ते भगवती सूत्रमें अवृत्ति अपच्चखानी कहा है ॥ और जो कोई एकली बाह्यकरनी अर्थात् क्रिया करते हैं और अपनेमें साधूपना लोगोंमें कहाते हैं वो मृषावादी है क्योंकि श्रीउत्तराध्ययनजीमें कहा है (नमुनिरणवासेण) इसका अर्थ ऐसा है कि बाह्य क्रिया रूप करनी अथवा जंगलमें वास करनेसेही मुनी अर्थात् साधू नहीं होता किन्तु ज्ञानसे साधू होता है सो उत्तराध्ययनजीमें कहा है यथा उक्त (नाणेन यमुनी होई) इस वचनके कहनेसे मालूम होता है कि ज्ञानी है सो मुनी है अज्ञानी है सो मिथ्यात्वी है ॥ इस लिये जो ज्ञान सहित क्रिया का करनेवाला है सो ही मुनि अर्थात् साधू है ॥ अथवा कोई गणितानुयोगसे नरक देवता आदिकी चाल चाल जाने अथवा यती श्रावक का आचार विचार जाने और विवेक शून्य बुद्धिकी विचक्षणता से कहे कि हम ज्ञानी हैं सो ज्ञानी नहीं क्योंकि श्रीउत्तराध्ययनजी मोक्षमार्गाध्ययनमें कहा है (एयपंच विहनाणंदव्वाणय गुणाणयपज्जवाणयसव्वेसिं नाणंनाणीहिंदंसीय) इसरीतिसे जब तक गुण पर्यायको न जाने और जीव अजीवकी सत्ता को न जाने तब तक ज्ञानी नहीं है जो नवतत्वका जान सो समकिती है । क्योंकि ज्ञान दर्शन विन जो कहे कि हम बाह्य रूप क्रिया करनेसे चारित्रिया हैं अर्थात् साधू वे भी मृषावादी हैं अर्थात् झूठा है क्योंकि श्रीउत्तराध्ययनजीमें कहा है कि (नाणभिदंसणस्सनाणेणनाणेन विनानहुंति चरणगुणान

धि अगुणियस्समुक्खोनाथि अमोक्खस्सनिव्वाण) इस वचनके कहनेसे जो कोइ ज्ञान हीन क्रियाका आडम्बर दिखाय कर भोले जीवोंको अपने जालमें फसाते हैं सो जिनाज्ञाके चोर महा ठग हैं उन ठगोंका सग आत्मार्थी भव्यजीवको न करना चाहिये क्योंकि यह बाह्य रूप करणी (क्रिया) अभव्य भी करते हैं इस लिये इस बाह्य रूप क्रियाको देखकर उसके मिथ्या जाल में न फसना क्योंकि आत्माका स्वरूप जाने बिना सामायक प्रतिक्रमणादिपच्चक्खाण द्रव्य निक्षेपा में पुण्य बन्ध आश्रय है सम्वर नहीं क्योंकि श्री भगवती सूत्र में कहा है (आया खलु द्रय) इस वाक्यसे जान लेना क्योंकि जीव स्वरूप जाने बिना तप सयम क्रियादिक का कारण केवल पुण्य प्रकृति देवभव अर्थात् देवता होनेके कारण है मोक्षका कारण नहीं यदि उक्त श्री भगवती सूत्रे (पुव्वतवेण पुव्व सयमेण देवलोएउववज्जतिनाचेवण आय भाव वत्तव्वयाए) इस लिये यह तप सयम बाह्य रूप ज्ञान बिना पुण्य बन्धका हेतु है । अथवा कितने ही एक क्रिया रहित अर्थात् आचार करके हीन हैं और ज्ञान करके हीन हैं और गच्छ की लज्जा (शर्म) से सूत्र पढते हैं और बाचते हैं अथवा उसी शर्म से वृत्त पच्चखानादिक करते हैं व पुरुषभी द्रव्य निक्षेप में हैं क्योंकि श्री अनुयोग द्वार सूत्र में ऐसा कहा है कि (इमसण गुण मुक्क योगी छकाय निरणुकंपा हया इवउद्दामा गया इवनिर कुसा घठामठातुप्पोठा पडुरया उरणाजिणाण आणारासछदा विह-रिऊणउभऊ कालं आवस्सगस्स उवठविन्त लोगुत्तारियम् द्ववावस्सय) अर्थात् ॥ जिन पुरुषोंको छकायके जीवोंकी दया नहीं है और (घोड़ा) की तरह उन्मत्त हैं अथवा हाथीकी तरह निरकुश हैं और अपने शरीरको खूब धोना मसलना साबू लगाना और

अच्छे २ सफेद कपडा धोबीमें धुलाय कर पहराना अच्छी तरहसे शरीरका शृंगार करना और गच्छक ममत्व भाव में फसे हुए स्वइच्छा चारी वीतरागकी आज्ञाको भाजते (छाडते) हुए जो कोई तपस्यादिक क्रिया करते हैं सो सर्व द्रव्य निक्षेपा में है । अथवा जातिष अर्थात् टेवा जन्मपत्री वा वर्षफल बनाते हैं ग्रह गोचर बताते हैं। और वैदिक अर्थात नाडीका देखना औषधि करते हैं (और अपनेको आचार्य उपाध्याय अथवा यती कहलाते हैं और लोगोंके पासमें अपनी महिमा करातेहैं वे लोग पत्री बन्धा नेकी रुपयापरझोल फिरा हुआ) खोटे रुपयके समान हैं और घणा ससारमें भ्रमण अर्थात जन्म मरण करने वालेहैं इस लिये वे लाग अनन्तनीक हैं क्योंकि श्री उतराध्ययनजीके अनाथी अध्ययने विस्तार पूर्वक लिखा है वहांसे जानो । और जो कोई सूत्रका अर्थ गुरु मुखस मीरे बिना और नयनिश्चपा प्रमाण ज्ञान बिना अथवा निश्चय आत्म स्वरूप जाने बिना और निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णि, टीका, बिना जो उपदेश देते हैं वे लोग आप तो ससारमें डूबते हैं और दूसरोंको डुबाते हैं क्योंकि जो उनके पास में बैठता है सोही डूबता है इसलिये उनका सग न करना क्योंकि जो जबतक निर्युक्ति आदिक अथवा व्याकरण के शब्दको न जाने तो उपदेश न दे क्योंकि श्री प्रश्न व्याकरण सूत्र और अनुयोग द्वार सूत्र में ऐसा कहा है (अज्जत्थचेव.सोलमम) इत्यादि जब तक सोलह बचन नहीं जाने तब तक उपदेश नहीं देवे । अथवा पचागी समझे बिना भी उपदेश न देवे यदि उक्त श्री भगवती सूत्रमें (सुत्तथो खलु पढमोबी उनिर्युत्तिमीसम भणि उइत्तो नईयणुउ गोनाणुत्राव जिणवरोहि) इस रीति से कहा है तो फिर पचागीके बिना भी उपदेश देना मिथ्या बात हैं इस लिये पचागी

को मानना अवश्य मेव है। अब यहां कोई विवेक शून्य बुद्धि विचक्षण होकर बोले कि हम सूत्र के ऊपर अर्थ करते हैं तो फिर नियुक्ति और टीकाका क्या काम है। ऐसा कहने वाला भी पुरुष महा मूरख और मिथ्या वादी है क्योंकि श्री प्रश्न व्याकरण सूत्र में ऐसा कहा है कि (वयणतियाऽगतिय) इत्यादि जाने बिना और नय निक्षेपा जाने बिना जो उपदेश देते हैं वे अवश्य मेव मृषा अर्थात् झूठ बोलते हैं ऐसा अनेक सूत्रों में कहा है इस लिये बहु श्रुत अर्थात् पण्डितके पास में उपदेश सुने ऐसा श्री उत्तराध्ययनजी में कहा है कि बहुश्रुत मरु अथवा समुद्र वा कल्प वृक्ष के समान है इस लिये आत्मार्थि भव्य जीव बहुश्रुतोंके पास में उपदेश सुने कपटी वाचाल मूर्ख धूर्तोंके पास में न जाय। इस रीतिसे नाम, स्थापना, और द्रव्य, ये तीन निक्षेपा कहे। अब भाव निक्षेपाका वर्णन करते हैं कि। जिसका नाम होय आकार और लक्षण गुण सहित वस्तुमें मिले उस वस्तु में भाव निक्षेपा होय क्योंकि श्री अनुयोग द्वार सूत्र में कहा है (उवउगाभाव) इति वचनात् इस लिये पूजा दान तप शील क्रिया ज्ञान सब भाव निक्षेपा सहित होय तो लाभ कारी है। इस जगह कोई विवेक शून्य बुद्धि विचक्षण ऐसा कहे कि मन परिणाम दृढ़कर के करे उसीका नाम भाव है ऐसा कोई कहता है वह सुखकी वान्छाका अभिलाषी है क्योंकि मिथ्यात्वी भी सुखकी वाञ्छाके वास्ते मनको दृढ़कर के करते हैं तो वह मनका दृढ़ करना सो भाव नहीं इस जगह तो सूत्र अनुसार विधि और वीतरागकी आज्ञा हेय और उपादेय कहा है उसकी परीक्षा करके अजीव आश्रव बन्ध ऊपर हेय कहते त्याग भाव और जीवका स्वगुण सम्वर निर्जरा मोक्ष उपादेय अर्थात् ग्रहण करनेका भाव और रूपी गुण है तिसको

द्रव्य जान कर छोडे जैसे मन, वचन, काया, लेश्यादि, सर्व पुद्गलीक रूपी गुण जानकर छोडे और ज्ञान, दर्शन, चारित्र, वीर्य ध्यान प्रमुख जीवका गुण सर्व अरूपी जान कर ग्रहण करे उसी का नाम भाव निक्षेपा है। इसरीति से नाम स्थापना द्रव्य भाव सहित लाभ कारी है बिना भावके निरर्थक है। इस रीति से चार निक्षेप कहे। अब इन चार निक्षेपोंको किलनेहीएक वस्तुओंके ऊपर उतार कर जिज्ञासुओंके समझने के वास्ते दिखाते हैं सो पेश्तर जीवमें उतारते हैं। नाम जीव जैसे किसी जगा अजीव वस्तुका कोई कहे कि यह जीव है। स्थापना जीव उसको कहते हैं कि (जीव) ये अक्षर लिखकर स्थापना करे अथवा चित्राम आदि मूर्ति बनाय। द्रव्य जीव उसको कहत हैं कि एकन्द्रिसे लेकर पचेन्द्री पर्यन्त सर्व जीव हैं परन्तु सर्वका आपसमें उपयोग मिले नहीं इस लिये व द्रव्य जीव हैं। भाव जीव उसको कहते हैं कि जिसने अपना स्वरूप ओलखा (जाना) और समकित सहित आत्म उपयोग में वर्ते है। इस रीतिसे जीव में कहे। अब धर्मास्तिकायम कहते है कि। धर्म ऐसा कहना सो तो नाम निक्षेपा धर्मास्तिकाय ऐसा अक्षरोंको लिख कर स्थापना करना सो स्थापना है। द्रव्य धर्मास्तिकाय उसको कहते हैं कि असंख्यात प्रदेश हैं।भाव धर्मास्तिकाय उसको कहते हैं कि जिस वक्त जीव वा पुद्गलको चलनेमें सहायता करे उस वक्तमें भाव धर्मास्तिकाय कहना। इसी तरह अधर्मास्तिकाय आदि सर्व द्रव्योंमें जान लेना। अब साधूमे चार निक्षेपा उतार कर दिखाते हैं। जैसे किसी मनुष्यको साधू कह कर बोले वह नाम साधू है। स्थापना साधू उसको कहते हैं कि साधूकी मूर्ति वा चित्रामादि आकार यथावत् होय। द्रव्य साधू उसका कहते हैं कि पचमहाव्रत पाले और यथावत कपडोंकी

पडिलेहना (कपड़ोंका देखना) आदि क्रिया अनुष्ठानादि करे और (४२) दूषण टाल कर अहार पाना इत्यादि शास्त्र अनुसार क्रियादि करे परन्तु मोक्षका साधन जो ज्ञान वा ध्यान आदि आत्म उपयोग यथावत् नहीं वह द्रव्य साधु है ॥ भाव साधू उसको कहते हैं कि मोक्ष मार्गका साधे और ज्ञान ध्यान आत्म उपयोग सम्वर आदि गुणाको यथावत् साधे सो भाव साधु है । अब आरिहन्तके ऊपर उतारते हैंकि जो किसी पुरुषका नाम आरिहन्त होय सो नाम आरिहन्त है।स्थापना आरिहन्त सो वरोम जिन प्रतिमा पाषाण काष्ट चित्राम आदि सब स्थानोंमें है । और द्रव्य आरिहन्त उनको कहते हैं कि जब तक केवल ज्ञान उत्पन्न न होय अर्थात् छद्मस्थ अवस्था रहे तब तक द्रव्य आरिहन्त है ॥ भाव आरिहन्त उसको कहते हैं कि जिनको केवल ज्ञान उत्पन्न हुआ और लोका लोक जाने अथवा समोसरणमें बैठ कर भव्य जीवोंको भाष्य प्रा र अर्थ उपदेश देय सो भाव आरिहन्त हैं । इसी तरह सिद्धादिक में जान लेना ॥ अब ज्ञानमें चार निक्षेपा उतारते हैं ॥ नाम ज्ञान जैसा किसीका ज्ञान ऐसा नाम होय ॥ स्थापना ज्ञान पुस्तकों में लिखा हुआ है अथवा ज्ञान ऐसे अक्षर लिखकर स्थापना करे वह स्थापना ज्ञान है ॥ द्रव्य ज्ञान जो उपयोग बिना सिद्धान्तको पठन कर अथवा दूसरोंको सुनावे वा अन्यमति अर्थात् सब मत वालोंके शास्त्रोंको जाने अथवा जैनमतके ३ अनुयोग आदि जाने वो द्रव्य ज्ञान है ॥ भाव ज्ञान उसको कहते हैं कि छः द्रव्य नव तत्वको जानकर ' अजीव वन्ध आश्रव आदिको हेय जानकर छोडे केवल जीव द्रव्यका और सम्वर निर्जरा मोक्ष आदिकको उपादेय अर्थात् ग्रहण कर उसको भाव ज्ञान कहते हैं ॥ अब तप ऊपर भी उतारते हैं । नाम तप उसको कहते हैं कि जो किसी

का तप ऐसा नाम हो ॥ स्थापना तप उसको कहते हैं कि जो पुस्तकोंमें तपस्याकी विधि लिखी है ॥ द्रव्य तप उसको कहते हैं कि पुग्य रूप बेला तेला चोला मास खमण आदि तपस्या करे वो द्रव्य तप है ॥ भाव तप उसको कहते हैं कि पर वस्तुमें अन्तरमे ममत्व भाव न करना अथवा पर वस्तुका त्याग उसका नाम भाव तप है ॥ इसी रीतिसे सम्वर निर्जरा मोक्ष आदि जो कि संसारमें पदार्थ हैं उन सबके ऊपर निक्षेपा उतारते है सोही श्रीअनुयोग द्वार सूत्रमें कहा है । जथ्ययजं ज्जाणि जंजानिक्खे निरिवयो निरवसे सज्जयय मोज्जाणिज्जाचोक्रय निक्खिवेवय ॥ इस रीतिसे सिद्धान्तोंमें कहा है कि जो विशेष निक्षेपा उतारना न जाने तौभी ये चार निक्षेपा तो अवश्य मेव हरएक वस्तुमे उतारे इन निक्षेपोंका विशेष कथन हमारा किया हुआ द्रव्य अनुभव रत्नाकरमें देखो ॥ इस रीतिसे चार निक्षेपा अर्थात् शब्द नय कहा ॥ अब छठा समभिरूढ नय कहते हैं ॥ जिस वस्तुका कितनाही गुण तो प्रगट हुआ है और कितनाही नहीं हुआ परन्तु जो गुण प्रगट नहीं हुआ है सो गुण अवश्यमेव प्रगट होगा इसलिये उस वस्तुको सम्पूर्ण माने क्यों कि देखो जैसे केवल ज्ञानी १३ में गुणठाने वाले को सिध्द कहे और तेरहवें गुण पाने वाला सिध्द है नहीं किन्तु किन्तु शरीर समेत है परन्तु आयु कर्मक्षय होनेसे अवश्य मेव सिध्द होगा इस लिये उसको सिध्द कहा क्योंकि यह समभिरूढ नय वाला एक अंश ओछी वस्तुको भी सम्पूर्ण वस्तु कहे ॥ इस रीतिसे समभिरूढ नय कहा ॥ अब एवंभूतनय कहते हैं ॥ जो वस्तु अपने गुणमें सम्पूर्ण होय और अपने गुणकी यथावत क्रिया करे उसीको पूर्ण वस्तु कहे क्या कि देखो जैसे मोक्ष स्थान पहुंचे हुए जीवकोही सिध्द कहे । अथवा स्त्री पानीका घडा भरकर

सिरके ऊपर रखी हाथ उस वक्तमें घट अर्थात् घडा कह अन्य धारक्त हुएसा घडा न कह इस लिय जो वस्तु अपने गुण क्रियामे यथावत प्रवृत्तती है उस वक्त उसका वस्तु कह ॥ इस रातिसे एव भूत नय कहा ॥ इस रातिसे सातों नयोंका जुदा २ स्वरूप कहा ॥ अब इन साता नयोंका दृष्टान्त श्रीअनुयाय द्वारमें कहा है उसी रातिसे इस जगह भी (७) नय उतार कर दिखात हैं ॥ एक पुरुषने दूसरे पुरुषसे पूछा कि तुम कहा रहत हो सो वो बोला कि म लोकमें रहता हु ॥ तब उसने कहा कि भाई लोकके तीन भेद हैं ॥ एक तो अधो (नीचा) लोक और दूसरा ऊर्ध्व (ऊचा) लोक । तीसरा तिर्छा (मध्य) लोक । इस लिय इन तीनोंमेंसे किस लोकमें रहता है ॥ तब वो बोला कि मै तिर्छा अर्थात् मध्य लोकमें रहता हु ॥ फिर उसने पूछा कि भाई मध्य लोकमें तो असंख्याता द्वीप समुद्र है तू किस द्वीपमे रहता है ॥ तब वो बोला की म जबू द्वीप रहता हू ॥ फिर उसने पूछा कि भाई जम्बू द्वीपमें क्षेत्र बहुत हैं तू किस क्षेत्रमे रहता है ॥ तब वो बोला कि मैं भरत क्षेत्रम रहता हू ॥ फिर उसने पूछा कि भाई भरतक्षेत्रमे तो देश बहुत है तू कौनसे देशमे रहता है तब उसने कहा कि भाई मैं अमुक देशमें रहता हू ॥ तब उसने कहा कि भाई देशम तो ग्राम नगर बहुत हैं तू किस ग्राम नगरमे रहता है फिर उसने पूछा तब उसने कहा मैं अमुक नगरमे रहता हू तो उसने कहा कि भाई नगरमे तो मुहल्ला (वाड) अथवा गुवाडा (वास) इत्यादि बहुत होते हैं तू किस मुहल्लेमे रहता है ॥ तब उसने कहा कि मैं अमुक मुहल्लेमें रहता हू॥फिर उसने पूछा कि भाई मुहल्लेमें तो घर बहुत हैं तू किस घरमें रहता है ॥ तब वो बोला कि मैं अमुक घरमे रहता हू ॥ यहा तक तो नैगम नय जानना ॥ अब

संग्रह नय वाला बोला कि तू कहा रहता है ॥ तब वो बोला कि मैं अपने शरीरमें रहता हूं ॥ तब व्यवहार नय वाला कहने लगा कि मैं अपने बिछौना (आसन) पर बैठा हूं इस जगह रहता हूं ॥ तब ऋजु सूत्रनय वाला बोला कि मैं अपने असंख्याता प्रदेशमें रहता हूं ॥ तब शब्द नय वाला बोला कि मैं अपने स्वभावमें रहता हूं ॥ तब समभिरूढ नय वाला बोला कि मैं अपने गुणमें रहता हूं। तब एवं भूत नय वाला बोला कि मैं अपने ज्ञान दर्शणमें रहताहूं । इसी रीतिसे ७ नयके ऊपर दृष्टान्त कहा। अब कोई पुरुष एक प्रदेश मात्र क्षेत्रको अंगीकार करके पूछने लगा कि यह प्रदेश किसका है । उस वक्त नैगम नय वाला कहने लगा कि यह प्रदेश छओ द्रव्यका है क्योंकि एक आकाश प्रदेशमें छओ द्रव्य रहते हैं इसलिये छओं द्रव्य इकट्ठे हैं । वहा संग्रह नय वाला कहने लगा कि काल तो अप्रदेशी है क्योंकि सर्व लोकमें काल एक समय वर्तते हैं सो आकाशमें प्रदेश जुदा २ नहीं इसलिये ५ का है ६ का नहीं ॥ तब व्यवहार नय वाला कहने लगा कि जिस द्रव्यका मुख्य प्रदेश दाखे उसी द्रव्य का प्रदेश है इसलिये सब द्रव्योंका नहीं । तब ऋजुसूत्र नय वाला कहने लगा कि जिस द्रव्य का उपयोग देकर पूछे उसी द्रव्य का प्रदेश है क्योंकि जो धर्मास्तिकाय का उपयोग देकर पूछे तो धर्मास्तिकाय का प्रदेश है अथवा अधर्मास्तिकाय का उपयोग देकर पूछे तो अधर्मास्ति काय का प्रदेशक है । तब शब्दनय वाला बोला कि जिस द्रव्यका नाम लेकर पूछे उसी द्रव्यका प्रदेश कहना । तब समभिरूढ नय वाला कहने लगा कि एक आकाश प्रदेश में धर्मास्तिकाय का एक प्रदेश और अधर्मास्तिकायका एक प्रदेश जीवका असंख्यात प्रदेश पुद्गल परमाणु अनन्ता है । तब भूतनय वाला कहने लगा कि जिस प्रदेश में जिस द्रव्यको

क्रिया गुण करता हुआ दीखे तिस समय तिस द्रव्यका प्रदेश है। इस रीति से प्रदेश मैं (७) नय कहे ॥ अब जीवमें (७) नय कहते हैं। नैगम नय वाला ऐसा कहता है कि गुण पर्याय और शरीर सहित ससारमें हैं सो सर्व जीव है इस नय वाले पुद्गल द्रव्य अथवा धर्मास्तिकाय आदिक सर्व जीव म गिना । तब समह नय वाले ने पुद्गल द्रव्य अथवा धर्मास्तिकाय आदिक सर्व ह नय वाला बोला कि असख्यात प्रदेश वाला जीव है। तब व्यवहार नय वाला कहने लगा कि जो विषय लेवे कामादिक चितारे पुण्यकी क्रिया करे सो जीव इस व्यवहार नय वालेने धर्मास्तिकाय आदि और सर्व पुद्गल आदि छोडा परन्तु ५ इन्द्री मनलेश्या आदि सूक्ष्म पुद्गल शामिल किया क्योंकि विषय आदिक तो इन्द्रिया लेती हैं इसलिये थोडासा पुद्गल शामिल लेकर जीव कहा। तब ऋजुसूत्र नय वाला कहने लगा कि उपयोग वाला है सो जीव है इस नय वालेने इन्द्री आदिक पुद्गल तो न लिया परन्तु ज्ञान अज्ञानका भेद न किया ॥ तब शब्द नय वाला कहने लगा कि नाम जीव, स्थापना जीव, द्रव्यजीव, भाव जीव, इस मयम गुण निर्गुण का भेद न हुआ । तब समभिरूढ नय वाला कहने लगा कि जो ज्ञानादिक गुण वाला है सो जीव है इस नय वालेने मति ज्ञान और श्रुतिज्ञान जो साधक अवस्थाका गुण है सो सर्व जावम शामिल किया । तब भूत नय वाला कहने लगा कि जो अनन्तज्ञान अनन्त दर्शन अनन्त चारित्र, अनन्त वीर्य शुद्ध सत्ता वाला है सो जीव है। इस नय वालेने जो सिद्ध अवस्थामें गुण है उस गुणवालेकोही जीव कहा। इस रीति से ही जीव में (७) नय कहे ॥ अब धर्मम (७) नय कह कर दिखाते हैं। नयगम नय वाला बोला कि सर्व धर्म है क्योंकि धर्म की

इच्छा सब कोई रखता है । तब संग्रह नय वाला कहने लगा कि जो बड़ (बुजर्ग) अथवा अपनी कुल जाति की मर्यादा से बाप दादे करते आये हैं सो ही धर्म है इस नय वाले ने अनाचार छोडा परन्तु कुलाचार को अंगीकार किया । तब व्यवहार नय वाला बोला कि जो सुखका कारण सो धर्म है इस नय वालेने पुण्य करणी को धर्म कहा ॥ तब ऋजुसूत्र नय वाला कहने लगा कि उपयोग सहित वैराग्य रूप परिणाम सो धर्म है इस नयवालेन यथा प्रवृत्ति के करणका प्रणाम सर्व धर्म में लिया सो ऐसा वैराग्य रूप परिणाम तो मिथ्यात्वीका भी होता है ॥ तब शब्द-नय वाला बोला कि जिसको समकितकी प्राप्ति है सो धर्म है क्योंकि धर्म का मूल समकित है ॥ तब समभीरूढ नय वाला कहने लगा कि जीव अजीव और नव तत्व अथवा छ द्रव्य का जानकर अजीवका त्याग करे व जीव सत्ता को ग्रहण करे ऐसा जो ज्ञान दर्शण चारित्र सहित जो प्रणाम वो धर्म है इस नय वालेन साधक और सिद्ध परिमाण धर्म में लिया ॥ तब भूत नय वाला कहने लगा कि शुक्ल ध्यान और रूपातीत परिणाम पक्षक श्रेणी कर्म क्षयकरने का कारण (हेतु) सो धर्म क्योंकि जीवका मूल स्वभाव है सो धर्म है उस धममे ही मोक्षरूप कार्यकी सिद्धि होती है इसलिये जीवका जो स्वभाव सो धर्म है इस रीति से जीवम (७) नय कहे । अब सिद्धिमें (७) नय कहते हैं । नैगम नय वाला सर्व जीवों को सिद्धि कहता है क्योंकि सर्व जीवोंके (८) रुचक प्रदेश सिद्ध के समान हैं उन आठ रुचक प्रदेशों को कर्म कदापी नहीं लगता इस-लिये सर्व जीव सिद्ध है । तब संग्रहनय वाला बोला कि सर्व जीवकी सत्ता सिद्ध के समान है । इस नय वाले ने पर्यायार्थिकनय

का अपक्षा तो छोड दी और द्रव्यार्थिक नयकी अपक्षा अंगीकार करी। तब व्यवहार नय वाला कहने लगा कि विद्या लब्धि चटक चमत्कार आदि सिद्धि जिस मे होय सो सिद्ध है क्योंकि यह व्यवहारनय वाला देखा हुई वस्तु को मानता है इसलिये बाह्य तप प्रमुख अनेक तरह की सिद्धि वाले जीवों को दिखा ने वाले हैं उनको सिध्द मानता है इसलिये इस नय वाले ने वाह्य सिध्दि अंगीकार करी॥ तब ऋजुसूत्र नय वाला बोला कि जिसने सिध्दकी सत्ता और अपनी आत्माकी सत्ताओं लिखा अर्थात् जाना और उपयोग सहित जिस वक्त ध्यान में अपने जीवको सिध्द माने उस वक्त में वो सिध्द है इस नय वालेने क्षायिक समकित वाले को सिध्द माना। तब शब्दनय वाला कहने लगा कि जो शुध्द शुक्ल ध्यान रूप परिणाम और नामादि निक्षेपा से होय सो सिध्द है। तब समभिरूढनय वाला बोला कि जो केवल ज्ञान केवल दर्शन यथाख्यात चारित्र आदि गुणवन्त होय सो सिध्द है इस नय वाले ने १३ वें गुण ठाने वा १४ वें गुणठान वाले केवली को सिध्द कहा ॥ तब भूतनयवाला कहने लगा कि सकल कर्म क्षय करके लोकके अन्तमें विराजमान अष्टगुण करके संयुक्त सो सिध्द है। इस रीतिसे सिध्दमें (७) नय कहे। इन सातों नयों का जो मिला हुआ वचन माने और एक नय का न उत्थावे सो समकिती अर्थात् जिन धर्मी है और जो इन सातों नयमें से एक नयका भी उठाय देय सो मिथ्यात्वी। इसलिये सातों नयका जो वचन है सो तो प्रमाण है। और जो एक नयका वचन है सो अप्रमाण इस रीति से एक अनेक पक्ष कहा। अब सत्य असत्य पक्ष से प्रमाणका निरूपण करते हैं सो प्रमाणके दो भेद हैं ॥ १ प्रत्यक्ष प्रमाण । २

पराक्ष प्रमाण । प्रथम प्रत्यक्ष प्रमाणका स्वरूप कहते हैं कि जो जीव केवल ज्ञानको प्राप्त होकर उस केवल ज्ञानके उपयोगसे सर्व द्रव्यों को जाने उनके पर्यायोंको जाने और भूत भविष्यत् वर्तमान काल की सर्व बातें एक समय में अर्थात् एक कालमें जाने उसका नाम प्रत्यक्ष ज्ञान है सो केवल ज्ञान तो सर्व प्रत्यक्ष है ॥ और मन पर्यव ज्ञान और अवधि ज्ञान ये दो ज्ञान देश प्रत्यक्ष हैं ॥ क्योंकि मन पर्यव ज्ञानवाला तो ढाई द्वीपके जो संज्ञीपंचेन्द्रीजी व हैं उनके मनको जानने वाला है और सर्व की बात का जानने वाला नहीं इस लिये उसको देश प्रत्यक्ष कहा ॥ और दूसरा जो अवधी ज्ञान सो पुद्गल द्रव्यको प्रत्यक्ष जानता है और को नहीं इस लिये यह भी देश प्रत्यक्ष है ॥ अब दूसरा परोक्ष प्रमाण का स्वरूप कहते परोक्ष प्रमाण सर्व छद्मस्थ जीवों को होता है सो इस परोक्ष प्रमाण में एक तो मति ज्ञान है दूसरा श्रुत ज्ञान है सो मति नाम बुद्धि से जो जाना जाय सो तो मति ज्ञान है ॥ और श्रुति अर्थात् शास्त्रोंसे जाना जाय सो श्रुत ज्ञान है ॥ सो मति ज्ञानका तो शास्त्रोंमें अनेक जगह वर्णन किया है इस लिये इस जगह न किया ॥ और श्रुति ज्ञान अर्थात् परोक्ष ज्ञान है उसीको परोक्ष प्रमाण कहते हैं ॥ सो उस परोक्ष प्रमाण के चार भेद हैं ॥ एक तो इन्द्री आदिक से प्रत्यक्ष होना ॥ दूसरा आगम अर्थात् शास्त्रका प्रमाण ॥ तीसरा अनुमान प्रमाण ॥ चौथा उपमान प्रमाण॥ अब इन चारों भेदों में से एक२ भेद कोसमझाते हैं सो पेश्तर इन्द्री प्रत्यक्ष प्रमाण को परोक्ष प्रमाण में समझाते हैं इन्द्री उसको कहते हैं कि जैसे पांच इन्द्री अपने २ विषय को जुदा प्रत्यक्ष जानती है इस लिये यह इन्द्री ज्ञान जैन धर्मके बिना सर्व मतवाले प्रत्यक्ष प्रमाणमें इन्द्रियों से विषयका प्रत्यक्ष होना उसीको

प्रत्यक्ष ज्ञान मानते हैं इस अपेक्षा से इसको प्रत्यक्ष ज्ञान कहा परन्तु आत्म ज्ञान प्रत्यक्ष नहीं इस लिये यह (इन्द्री प्रत्यक्ष) प्रत्यक्ष प्रमाणमें नहीं किन्तु परोक्षग प्रमाणमें हैं ॥ अब आगम प्रमाण कहते हैं कि जो शास्त्रो में लिखा है उसको अगीकार करना उसका नाम आगम प्रमाण है क्योंकि ऐसा जैसे देवलोक और नर्क आदिकको अथवा और भी ऐसी वस्तु है कि सर्वज्ञके विना दूसरा देख न सके और उन वस्तुओंका शास्त्रोंमें नाम है उन वस्तुओंको मानना उसीका नाम आगम प्रमाण हैं ॥ अब अनुमान प्रमाण कहते हैं कि लिंग देखनेसे लिंगीका ज्ञान होय उसका नाम अनुमान प्रमाण है क्योंकि देखो जैसे धुआ देखनेसे अग्नि का ज्ञान होना सो अनुमाण प्रमाण है ॥ उपमान प्रमाण उसको कहते हैं कि जो किसी वस्तुको किसी वुस्तुकी उपमा देकर समझावे कि इस वस्तुके सदृश्य फलानी वस्तु होती है ऐसा जो उसको दिखाय कर समझाय देना सो उपमान प्रमाण है ॥ इसरीतिसे प्रमाण का वर्णन किया और सत्य असत्य पक्ष भी इस जगह समाप्त हुआ ॥ और वक्तव्य अवक्तव्य सहित सत्य असत्य पक्षमें सप्त भगी कहते हैं सो प्रथम(७)भांगोंके नाम कहतेहैं।१स्यात् अस्ति। २स्यात्नास्ति ३ अस्ति स्यात् नास्ति ४ स्यात् अवक्तव्य। ५ स्यात्अस्ति अवक्तव्य। ६ स्यात्नास्ति अवक्तव्य । ७ स्यात्अस्तिनास्तियुगपत् अवक्तव्य ॥ इसरीतिसे सात भांगोंके नाम कहे ॥ अब प्रथम स्यात्अस्ति भांगेका अर्थ कहते हैं कि स्यात् कहता अनेकान्तपने सर्व अपेक्षा सहित जीव द्रव्यमे अपना द्रव्य, अपना क्षेत्र, अपनाकाल, अपनाभाव करके अस्ति है जैसे जीव अपने गुण पर्याय करके अस्ति है तैसे ही सर्व द्रव्य अपने २ द्रव्य क्षेत्रकाल भाव करके अस्ति हैं ॥ और दूसरे द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, करके नास्ति है । इसलिये

अपने गुण पर्याय करके अस्ति पना है इसलिये स्यात् अस्ति है ॥ अब स्यात नास्ति भागा कहते हैं जिसद्रव्यमें अपना द्रव्य क्षेत्रकाल का भाव करके तो अस्तिपना है दूसरे द्रव्यके द्रव्य क्षेत्रकाल भाव करके नास्ति पनाहै तो जिस द्रव्यमें अस्ति पना है उसी द्रव्य में दूसरे द्रव्यकी अपेक्षा से नास्ति पनाहै इस रीति से दूसरा भागा हुआ। अब स्यात् अस्ति स्यात् नास्ति तीसरा भागा कहते हैं कि जिस समयमें अस्ति गुण है उसी समयमें नास्ति गुण है इस लिये स्यात् अस्ति स्यात् नास्ति तीसरा भागा हुआ॥ अब स्यात् अवक्तव्य चौथा भागा कहते हैं कि जिस समयमें अस्ति है उसी समयमें नास्ति है तो दोनों गुण एक समय होनेसे वचन से कहनेमें नहीं आता क्योंकि अस्ति गुणको कहे तब तक असंख्याता समय लगे तब नास्तिपनेका मृषा अर्थात् झूठ लगे इस लिये अवक्तव्य कहा क्योंकि स्वय गुणसे अस्तिपना और परगुणसे नास्ति पना ये दोनो एक हैं परन्तु दोनो गुणको वचनसे एक साथ नहीं कह सक्ते इस लिये यह चौथा अवक्तव्य भागा कहा। अब स्यात् अस्ति अवक्तव्य और स्यात् नास्ति अवक्तव्य यह दोनों भागोंको शामिल कहते हैं कि चौथे भागेमें जो अवक्तव्य उससे सन्देह उत्पन्न हुआ कि अस्तिपनेका अवक्तव्यहै अथवा नास्ति पने का अवक्तव्यहै इस सन्देह को दूर करनेकेवास्ते दोनो भागे अवक्तव्य कहे क्योंकि वैसी वस्तुमें अस्ति गुणभी ऐसा है कि उस गुणको जान तो ले परन्तु वचनसे नहीं कह सके इस लिये अस्ति अवक्तव्य कहा वैसेही नास्तिमें समझ लेना इस रीतिसे दोनो भागे कहे। अब सात मा स्यात् अस्ति स्यात् नास्ति युगपत् अवक्तव्य भागा कहते हैं किएक समयमें अस्तिपना और नास्तिपना है तो दोनोंको एक समयमें कह नहीं सक्ता इस रीतिसे सातवा भाग हुआ॥ इस सप्त भंगीका

प्रतिपादन हमारा किया हुआ (स्याद्वादानुभाव रत्नाकर) चौथे प्रश्नके उत्तरमें युक्ति दृष्टान्तसे कथन किया है सो उसमें ऐसो और उससे भी विशेष (द्रव्य अनुभव रत्नाकर) में है। जिस रीति से यह सप्तभगी कह आये हैं उसी रीति से स्यात् नित्यस्यात् अनित्य अथवा स्यात् एक, स्यात् अनेक, इस रीतिकी अनेक सप्तभगी उत्पन्न होता है सो बुद्धिमान पाठकगण अपनी बुद्धिसे जान लेना। और यह सप्तभगी सिद्धमें घटती है और सिद्ध पदमें नय आदिक नहीं घटती है। इस रीति से सप्तभगी कही। अब सत्ता पञ्चात् करानेके वास्ते त्रिभगी कहतेहैं। १ बाधक। २ साधक। ३ सिद्ध इन तीनोंका अर्थ करते हैं। बाधक दिशा (अवस्था) तो मिथ्यात्वी जीवकी है। और साधक अवस्था समकितसे लेकर केवली पर्यन्त अथवा १४ वे गुण ठानतक साधक दिशा है। अब सिद्ध दिशा कहते हैं कि सकल कर्म से और ज्ञान दर्शन चारित्र वीर्य संयुक्त लोकके अन्तमें विराजमान सो सिद्ध है॥ ज्ञान। ज्ञाता। ज्ञय। इन तीनोंका अर्थ करते हैं। ज्ञान तो जीवका गुण है कि ज्ञान में गुण से जाने। और ज्ञाता जीव अर्थात् जानने वाला जीव है। और ज्ञय सर्व द्रव्यका जानना। इस रीति से ज्ञान ज्ञाता ज्ञय कहा। अब ध्यान। ध्याता। ध्येय। इन तीनोंका अर्थ करते हैं। ध्यान तो जीव स्वरूपका चिन्तवन॥ ध्याताजीव। ध्येय आत्म स्वरूप। इस रीतिसे ध्यान ध्याता ध्येय तीनों कहे। अब कर्त्ता। कर्म। इन दोनोंका भी अर्थ करते हैं। कर्त्ता तो एक जीव है। और कर्मके दो भेद हैं॥ १ मोक्ष। २ बन्ध। उस कर्मकी क्रिया भी दो हैं॥ मोक्षकी क्रिया तो सम्बर है॥ और बन्धकी क्रिया आश्रव है॥ कर्म चेतना कर्म बन्ध परणाम और कर्म फल चेतना कर्म उदयका

परिणाम। ज्ञान चेतना जीवका स्वय गुण। और आत्मा के तीन भेद हैं ॥ १ बाह्य आत्मा। २ अन्तर आत्मा। ३ परमात्मा। इन तीनोका अर्थ करते हैं ॥ प्रथम बहिर आत्मा तो उसको कहते हैं कि जो अज्ञानपनेसे घर कुटुम्ब स्त्री पुत्र कलत्र आदि अथवा शरीरादि पर वस्तु में आत्म बुद्धि करनेवाला जीव बाह्य आत्मा है। अन्तर आत्मा उसको कहते हैं कि जो जीव देह सहित है परन्तु शरीरसे अलग नि सन्देह आत्म गुण सिद्धके समान जाने और अपनी आत्माको सिद्धके समान मान कर ध्यावे सो अन्तर आत्मा है। अब परमात्माका अर्थ करते हैं कि चार कर्म घाती अर्थात् ज्ञाना वर्णि दर्शनावर्णि, मोहनी, और अन्तराय इन चारो को क्षय करके केवल ज्ञान उत्पन्न करे अथवा अष्ट कर्म क्षय करके सिद्ध अवस्थाको प्राप्त होय ये दोनो परमात्मा हैं। इस रीतिसे त्रिभंगी आत्मिका विचार कहा इसलिये इस जगह आठ पक्षका विचार सम्पूर्ण हुआ। अब एक २ द्रव्यमें छ २ गुण सामान्य सो उन सामान्य गुणोको दिखाते हैं सो पेहले छ सामान्य स्वभावोका नाम कहते हैं ॥ १ अस्तित्व कहता अस्तिपना है। २ वस्तुत्व कहता वस्तुपना है। ३ द्रव्यत्व कहताद्रव्यपना है। ४ प्रमेयत्वकहता प्रमेयपना है। ५ सत्त्वकहता सत्यपना है। ६ अगुरुलघुत्वकहता अगुरु लघुपना है। यह छ सामान्य गुण सबे द्रव्योंमे है। प्रथम अस्तिपना दिखाते हैं कि यह छ द्रव्य अपने गुण पर्याय प्रदेश करके अस्ति है और पाच द्रव्य अस्तिकाय हैं और काल द्रव्य अस्तिकाय नहीं है क्योकि देखो धर्म, अधर्म, आकाश, जीवके असख्यात प्रदेश शामिल होकर स्कन्ध बनना है। और पुद्गलम भी स्कन्ध बननेकी शक्ति है इसलिये यही अस्तिकाय है। और कालका समय किसी दूसरे समयमे मिले नहीं ।

समय जिनसे है वो समय भूत भविष्यत किसी कालसे मिले नहीं इसालिये काल अस्तिकाय नहीं है और पाच द्रव्य अस्तिकाय हैं। इस रीतिसे इनका अस्तिपना कहा। अब दूसरा स्वभाव कहते हैं कि वस्तुपना क्या है सोही दिखाते हैं कि। यह छओं द्रव्य एक क्षत्रमें शामिल अर्थात् इकट्ठे रहते हैं क्योंकि एक आकाश प्रदेशमें धर्मास्तिकायका एक प्रदेश। अधर्मास्तिकायका एक प्रदेश। जीव का अनन्ता प्रदेश। और पुद्गल परमाणु अनन्ता, रहता है परन्तु अपनी २ सत्तामें रहता है और दूसरेकी सत्तामे मिले नहीं इस लिये इनमें वस्तु पना कहा। अब तीसरा द्रव्य पना कहते हैं कि यह छओं द्रव्य अपनी अपनी क्रिया करते हैं जो अपनी जुदी क्रिया करसो द्रव्य हो दिखाते हैं कि। धर्मास्तिकायमें मुख्य चलना सहाय गुण है सो धर्मास्तिकायके कुल प्रदेशोंमें है सो वो चलन सहाय गुण सदा काल जीव और पुद्गलको चलनेमें सहाय देनेकी क्रिया करता है। अब इस जगह ऐसी शंका होती है कि जो धमास्तिकाय जीव और पुद्गलको चलनेमें सहाय देती है तो सिद्ध क्षेत्रमें जो सिद्धके जीव उनको क्यों नहीं चलाती है। इसका समाधान ऐसा है कि जो जीव पुद्गल चले उस वक्तमें धमास्तिकाय सहाय देती है जो नहीं चलनेवाले हैं उनको सहाय नहीं देती सो सिद्धके जीव अचल अविनाशी अक्रिय हैं इस लिये व सिद्ध पुरुष चले नहीं तो फिर धर्मास्तिकाय क्योंकर सहाय देय इसलिये धर्मास्तिकाय सिद्धके जीवोंको सहाय नहीं देती है परन्तु जो त्रस सिद्ध क्षत्रम निगोदके जीव हैं और पुद्गल परमाणु हैं उन सबको सदा काल सहाय देती है। इसी रीतिसे अधमास्तिकाय जीव पुद्गलको स्थिर करनेकी क्रिया करती है। और आकाश द्रव्य सर्व द्रव्योंके वास्ते अवगाहना अर्थात् जगह

देनेकी क्रिया करता है। इस जगह कोई ऐसी शंका करे कि अलोक आकाश में कोई दूसरा द्रव्य नहीं है तो फिर वो किसके वास्ते अवकाश अर्थात् जगह देता है। इस शंकाका ऐसा समाधान है कि अलोक आकाश में कोई दूसरा द्रव्य नहीं है तो किसका अव-काश नाम जगह देय इसलिये उस अलोक आकाशकी शक्ति तो अवगाहना अर्थात् जगह देनेकी है परन्तु उस जगह द्रव्य के न होनेसे क्या उसकी शक्ती कहीं चली गई सो तो नहीं क्यों कि देखो जैसे बाल विधवा स्त्री है उसको पुरुषका संयोग न होनेसे सन्तान की उत्पत्ती नहीं तो क्या उसको बन्ध्या कहना सम्भव है सो तो नहीं किन्तु बाल विधवा कहेंगे बन्ध्या तो नहीं कहेंगे ऐसेही उस अलोक आकाशमें भी अवगाहन शक्ति गुण है। ऐसेही पुद्गल द्रव्य भी मिलना और जुदा होना अपनी क्रिया करता है। ऐसे ही काल द्रव्य भी अपनी वर्त्तना रूप क्रिया करता है। और जीव द्रव्य भी ज्ञान लक्षण उपयोग क्रिया करता है। इस रीतिसे यह छओ द्रव्य अपने २ परिणामकी क्रिया कर रहे हैं। इस रीतिसे द्रव्यपना कहा। अब प्रमेयपना कहते हैं। केवली भगवान अपने ज्ञानसे छ द्रव्य ऐसा और मिलाया कि यह छओ द्रव्य कौन कौन कितना २ है सो अब छओं द्रव्योंका मान अर्थात् प्रमाण कहते हैं। धर्मास्तिकाय एक द्रव्य है। ऐसेही अधर्मास्तिकाय एक द्रव्य है। और आकाशास्तिकाय भी एक द्रव्य है और जीव अनन्ता है सो उस जीव अनन्तोंकी गिनती कहते हैं कि। सन्नी मनुष्य संख्याता और असन्नी असंख्याता। नारकी (नरक) असंख्याता। देवता असंख्याता। तिर्यच पञ्चेन्द्री असंख्याता। बे इन्द्री जीव असंख्याता। ते इन्द्री जीव असंख्याता। चौरेन्द्री जीव असंख्याता। पृथ्विकाय असंख्याता। अप्पकाय अर्थात् जलके

य जीव असंख्याता । तउकाय अर्थात् अग्निये जीव असंख्याता । वायुकाय अथात् हवाके जीव असंख्याता । प्रत्येक वनस्पतीके जीव असंख्याता । तिनसे सिद्धका जीव अनन्ता । तिस सिद्धके जीवसे बादर निगोदका जीव अनन्त गुणा सो बादरनिगोद उसको कहते हैं कि मूला, अदरक, गाजर, सूरन (जमाकन्द), फूलन, (फफुन्न), प्रमुख सब बादर निगोदमें हैं सो इस बादर निगाद क एक सूई के अग्रभाग टुकड़ में अनन्ता जीव हैं सो सिद्ध जीव से भी अनन्त गुणा है । और सूक्ष्म निगोद इस से भी सूक्ष्म है सो उस सूक्ष्म निगोद का विचार कहते हैं कि जितना लोक आकाश का प्रदेश है उतनाही निगोद का गोला है उस एक गोला में असंख्याता निगोद हैं । निगोद उसको कहते हैं कि जिसमें अनन्त जीव का पिंडरूप एक शरीर होय उसका नाम निगोद है । सो उस निगोद में अनन्त जीव हैं उन अनन्त जीव की किंचित् कल्पना करके दिखाते हैं कि भूतकाल के जितने समय होय उन सर्व समयों की गिनति कर और अनागत अर्थात् भविष्यत काल का जितना समय होय वो सब भेला (इकट्ठा) कर और उनको अनन्त गुणा करे जितना हो अनन्त गुणा करेका फल होय उतने जीव निगोद में हैं इसलिये एक निगोद में अनन्ते जीव हैं । सो वह संसारी जीव के असंख्यात प्रदेश एक जीव में हैं । सो उस एक २ प्रदेश में अनन्ता कर्म वर्गणा लग रही है । और एक २ कर्म वर्गणा में अनन्ता पुद्गल परमाणु हैं और अनन्ता पुद्गल परमाणु जीव से लग रहा है । और अनन्त गुणा परमाणु जीव से रहित अर्थात् अलग परमाणु रूप है अब किंचित् जावरा मान कहते हैं ॥ गाथा ॥ गोलाय असंखिज्जा असंख निगोय गोलउ इकि भणिया इकिकमि निगोए अणंत

जावा गुण य जा ॥ अर्थ ॥ निगोद में असख्यात गाला है उस एक २ गोला में असख्यात निगोद है उस एक २ निगोद में अनन्ता २ जीव हैं ॥ गाथा ॥ सत्तरससमहिआ किरइगाणु पाण मि विगुइ भवामगति सखयतिद्धुत्तर पाणु पुणईग मुहुत्तमि । अर्थ निगोदका जीव मनुष्य के एक स्वास मे (१७) भव अर्थात् सतरह दफे जन्म मरण कुछ एक अधिक करता है और एक मुहूर्त में मनुष्य पचेन्द्री मनुष्य के ३७७३ उस्वास होते हैं ॥ गाथा ॥ पण सठिस हस्सपणसय छत्तिसाईग मुहुत्त खुड्डभवा आवलियाण दासय छपनाणग खुड्डभवे ॥ अर्थ ॥ निगोदवाला जीव एक मुहूर्त में (६५५३६) भव करे है और उस निगोद वाले जीवका (२५६) आवली प्रमाण आयुष्य होती है यह खुल्लक अर्थात् छोटेसे छोटा भव होता है अब अर्थात् जन्म मरण इस नीगोद वाले जीव से कमती आयुष्य और किसीकी नहीं होवा ॥ गाथा ॥ अत्थि अणता जीवा जेहिंन पत्तोत तसाइपरिणामो उव वज्जति चयन्ति य पुणोवितत्थेव तत्थेव ॥ अर्थ ॥ निगोद म ऐसा जीव अनन्ता है कि जिसने त्रसपना कदापि नहीं पाया अनन्ता काल बीत गया और अनन्ता काल बीत जायेगा और जो जीव उसी जगह बारम्बार जन्म मरण करेगा और उस जगह बना रहेगा ऐसा निगोद म अनन्ता जीव है । सा उस निगोद म के दो भेद है । १ व्यवहार राशि । २ अव्यवहारराशि । सो व्यवहारराशि तो उसको कहते है कि जो जीव एकेन्द्री बादरपना अथवा त्रसपना पाय कर फिर पीछा उसी निगोद में जाय पड़ा उसको व्यवहार राशि कहते हैं और जो जीव कदापि निगोद मेंसे निकल कर बादर एकेन्द्री पना अथवा त्रसपना नहीं पाया और अनादि काल से उसी जगह जन्म मरण करता है उसको अव्यवहारराशि कहते है । सूक्ष्म

इस व्यवहारराशि में से जितना जीव मोक्ष जिस समय में जायगा उतनाही जीव उस समय में अव्यवहारराशि मेंसे निकल कर ऊंचा अर्थात् व्यवहारराशि मे आ जायगा। इस रीतिसे निगोदका विचार कहा। इस निगोदका असंख्याता गोला है सो वो निगोद वाले गोले के जीव छ दिशा का पुद्गलोंक अहारपने लेते हैं सो छ दिशा का अहार लेने वाले सफल गोला कहलाते हैं। और जो लोक के अन्त प्रदेश में निगोद के गोला हैं उन के जीव तीन दिशा का अहार करसते हैं सो निस्फल गोला है। और सूक्ष्म निगोद में एक साधारण वनस्पती स्थावर मेंही सूक्ष्म जीव हैं सो वह सूक्ष्म सर्व लोक में भरा हुआ है जैसे काजलकी कोथली भरी हुई है वैसही साधारण वनस्पती सूक्ष्म निगोद वाले जीवों से भरा हुई है। और चार स्थावर म ऐसा सूक्ष्म पना नहीं है इस सूक्ष्म निगोद में रहने वाले जीवको अनन्ता दुःख का द्रष्टान्त देकर दिखाते हैं कि। जो जीव पापादिक के करने से (७) वें नरक में जाता है उस सात वें नरक जाने वाले जीवका (३३) सागर का आयुष्य होती है सो उस ३३ सागर के जितने समय होय उतनीही वार सातवें नरक म जाय उस नारकी मे छेदन भेदन मारकूट का होता है उस दुःखको सब इकट्ठा कर अर्थात् तेतीस २ सागरकी आयुष्य पाके जितना दुःख सब इकट्ठा मिलाय कर इकट्ठा करे उतना दुःख निगोद वाले जीवको एक समय में होता है। अब दूसरा द्रष्टान्त और भी दिखाते हैं कि। मनुष्यके साढे तीन कोटि रोमावली होती हैं उतनाही कोई देवता लोहे की साढतीन कोटि सूई बनाय और उनको अग्नि में तपाय कर देवता अपनी लब्धि से एक साथ छेद जितना दुःख उस छेदन से होय उस से भी अनन्त गुणा दुःख उस निगोद वाले जीवको होता है

सों उस निगोदका कारण अज्ञान है । इस लिये हे भव्य प्राणियों उस अज्ञान को छोडो और ज्ञान को ग्रहण करो । इस रीतिसें निगोदका विचार और सर्व द्रव्य का प्रमेयपना कहा । अब सत्यपना कहते हैं । यह छओ द्रव्य एक समय मे उपजे हैं, और बिनसे हैं, और स्थिर रहता है, सो इसका विस्तार दिखाते हैं कि जैसे धर्मास्तिकाय मे अगुरु लघु पर्यायका असख्याते प्रदेशों मे घटता है दूसरेमें बढता है इसी रीतिसे घटता बढता रहता है क्यों कि अगुरु लघु पर्याय चपल है । और जिस प्रदेश में अनन्ता है उस प्रदेश में असख्याता इसी रीतिसे लोक प्रमाण असख्यात प्रदेश में सरीखा समकाल अगुरु लघु पर्याय फिर रहा है क्यों कि देखो जिस प्रदेश में असख्याता था सो वो व्यय अर्थात विनाश हुआ । और अनन्ता उत्पाद अर्थात् उत्पन्न हुआ इसी रीतिसे जिस प्रदेश में अनन्ता उसका वो व्यय अर्थात् विनाश हुआ और उस के ठिकाने असख्यातका उत्पाद अर्थात् उत्पन्न हुआ । और बाकी गुण ध्रुव हैं । इस रीतिसे एक उपजना और विनाश अथवा ध्रुव रहना येही सत्यपना है । जैसे धर्मास्तिकाय में उप- जना बिनसना और ध्रुव रहना है तैसे ही अधर्मास्तिकाय लोक प्रमाण असख्यात प्रदेश में हो रहा है । ऐसेही आकाश लोक अलोक अनन्ता प्रदेश में अगुरु लघु अर्थात् उत्पाद वय ध्रुव होरहा है ऐसेही एक जीवका असख्यात प्रदेश है उस में भी अगुरु लघु अर्थात उत्पादव्यय ध्रुव सदा काल होरहा है । तैसेही कालमे होरहा है इस रीति से सर्व द्रव्यमें सत्यपना है सो अगुरु लघुका है जो अगुरु लघु न होता तो प्रदेशों में भेदकहनाभी न बनता इस- लिये अगुरु लघुका भेदहै सोही सत्यपना है । जिसका सत्यपना अर्थात् अगुरु लघु एक है वो द्रव्यभी एकहै । और जिसका अगुरु

लघु अर्थात् सत्य पना जुदा है वो द्रव्य भी जुदा है इस रीतिसे सत्य पना कहा । अब अगुरु लघुपना कहतेहैं कि । जो द्रव्यका अगुरु लघु पर्याय है उस पर्यायका हानि वृद्धि होती है सो वृद्धिभी छ प्रकारकी है । और हानिभी छ प्रकारकी है । सो उन छओं प्रकारोंका नाम लिखते हैं ॥ १ अनन्त भाग वृद्धि । २ असंख्यातभागवृद्धि । ३ संख्यातभागवृद्धि । ४ संख्यातगुण वृद्धि । ५ असंख्यातगुणवृद्धि । ६ अनन्तगुणवृद्धि । यह छ प्रकार की वृद्धि कही ॥ अब हानि कहते हैं ॥ १ अनंत भागहानि । २ असंख्यातभागहानि । ३ संख्यातभागहानि । ४ संख्यातगुणहानि । ५ असंख्यातगुण हानि । ६ अनन्तगुणहानि । यह छ प्रकार हानि कहा ॥ यह वृद्धि और हानि सर्व द्रव्योंमे समय समयमें हो रही है ॥ वृद्धि कहता उपजना हानि कहता नाश होना ॥ इस रीतिसे छ सामान्य स्वभाव कहे ॥ अब गुणका भावना अर्थात् विशेष बात कहते हैं । जो सर्व द्रव्यमे सरीखा गुण है उसको तो सामान्य गुण कहते हैं । और जो एक द्रव्यमे गुण है वो दूसरे द्रव्यमें नहीं हैं वो द्रव्योंमें विशेष गुण कहा जाता है । और जो गुण किसी मे है और किसीमे नहीं है उसीको साधारण असाधारण भी कहते हैं । इसरीतिसे इन छओं द्रव्योंमे गुण अनन्त पर्याय अनन्त स्वभाव सदा साश्वता है सो श्री केवली भगवन्त ने देखा और उसका उपदेश दिया सो वो उपदेश सत्य है उस मे कोई तरह का सन्देह नहीं । इस रीति से जिन पुरुषों का नि सन्देह श्रद्धा अर्थात् विश्वास है उन्हीं पुरुषो ने इन पदार्थो को यथावत् जाना है उन्हीं पुरुषों का निश्चय ज्ञान मोक्ष का कारण है और जो ज्ञान का पाता है वो जीव विरति करता है विरति नाम त्याग का

खोटा अर्थ अर्थात् झूठ उपदेश देनेका त्याग किया उसने निश्चय मृषावाद का त्याग किया क्योंकि देखो श्री वीत राग सर्वज्ञ ने शास्त्रमें ऐसा कहा है कि जिस पुरुष ने चौथा वृत अर्थात् मैथुन (स्त्री सेवन) किया उसने तो एक चारित्र भग किया और उस चारित्र भग करने की आलोयना अर्थात् फिर करके चारित्र लेन से शुद्ध हो जाता है। और जिसने मृषावाद अर्थात् सिद्धान्त का वीतराग की आज्ञा से विपरीत उपदेश दिया उसने ज्ञान, दर्शन, चारित्र तीनों ही का भग कर दिया और उस मृषावाद अर्थात् झूठ उपदेश देने की आलोयना अर्थात् प्रायश्चित् लय तो भी शुद्ध न होय क्योंकि जिस झूठ उपदेश से भोले जीव मिथ्यात्व मार्ग अर्थात् जिनाज्ञा से विपरीत प्रवृत होगये हैं उस प्रवृत होनेसें जो संसारका बढना कम बढने का हेतु जो मिथ्या श्रवण दिया जो उपदेश जो संसार में भ्रमण करानेवाला ठहरा और उस मिथ्या उपदेश का करनेवाला अनेक जीवों को आप झूठा उपदेश देकर मिथ्यात्व में गेरता है इस लिये उस मृषावाद अर्थात् झूठा उपदेश देनवाले का आलोयना नहीं होती । क्योंकि उस चौथे वृत अर्थात् स्त्री सेवन करनवाले के तो एक चारित्र भग हुआ था परन्तु ज्ञान दर्शन भग नहीं हुआ था इस लिये उस चारित्र की आलोयना अर्थात् प्रायश्चित् आय गया और शुद्ध होगया । और जिसने मृषावाद अर्थात् जिनाज्ञासे विपरीत उपदेश दिया तो उस विपरीत उपदेश से ज्ञान दर्शन चारित्र तीनों ही भग हो गये उस चारित्र के भग करने से तो केवल भग करनेवाले की आत्मा मलीन होता है । इसलिये उस मलीन आत्माके शुद्ध [illegible] हो सकता है । परन्तु [illegible] न [illegible] आपो मलीन करता है [illegible]

स्थूल प्राणातिपात आदि पाच वृत और (७) गुण वृत तथा शिक्षा वृतादि यह (१२) वृत श्रावक के हैं सो इस सर्व वृत और देश वृत के भेद हैं तिन भेदों को निश्चय और व्यवहार दोनों तरह से दिखाते हैं। सो प्रथम प्राणातीपात निश्चय और व्यवहार का वर्णन करते हैं। जो जाव पर जीव को अपने सरीखा जान कर सर्व जीव की रक्षा करे और किसी जीव को न मारे उसका नाम दया अर्थात् अहिंसा हैं इस दयाका पालने वाला जीव प्रणातीपात अर्थात् जीवों की हिंसा करने से बचा इस को व्यवहार चारित्र कहते हैं। अब निश्चय चारित्र का वर्णन करत हैं। जो जीव कर्मों के वश दु ख पाता है उस कर्म रूप दु ख से अपने जीव को बचाना अर्थात् नया कर्म न बंधन देना और बंधे हुए कर्म को छुड़ाना उसका नाम निश्चय दया अर्थात् अहिंसा है। क्योंकि जीव कर्मों के वश करके हा ससार में जन्म मरण करता है इस लिये उन कर्मो से अपने जाव को बचाना अर्थात् कर्मो म न पड़ने देना और ज्ञान से कर्मो को छुड़ाय कर अपने जाव को निर्मल करता है वो जाव निश्चय प्रणातीपात का त्याग करता है। इस रीति से निश्चय व्यवहार प्राणातीपात वृत कहा। अब मृषावाद का स्वरूप कहते हैं। लौकिक में झूठा वचन न बोले उस को व्यवहार मृषावाद का त्याग कहत हैं। यह त्याग व्यवहारिक है। निश्चय मृषावाद का त्याग उसको कहते हैं। जो पर वस्तु पुद्गल शरीर इन्द्री आदिक हैं उनको अपना कहना यह निश्चय मृषावाद है। जो इन्द्री आदि शरीर पुद्गलादि वस्तुको अपना न कहे और इनको अज्ञान दिशा जान कर छोड़ उसने निश्चय मृषावाद छोड़ा। अथवा सिद्धात का खोटा अर्थ कहे सो भी निश्चय में मृषावादी है जिसने सिद्धातका

मोटा अर्थ अथात् झूठ उपदेश देनेका त्याग किया उसने निश्चय मृषावाद का त्याग किया क्योंकि देखो श्री वीत राग सर्वज्ञ देवने शास्त्रोंमें ऐसा कहा है कि जिस पुरुष ने चौथा वृत अर्थात् मैथुन (स्त्री सेवन) किया उसने तो एक चारित्र भग किया और उस चारित्र भग करने की आलोयना अर्थात् फिर करके चारित्र लेने से शुद्ध हो जाता है। और जिसने मृषावाद अर्थात् सिद्धान्त का वीतराग की आज्ञा से विपरीत उपदेश दिया उसने ज्ञान, दर्शन, चारित्र तीनों ही का भंग कर दिया और उस मृषावाद अर्थात् झूठ उपदेश देने की आलोयना अर्थात् प्रायश्चित् लेय तो भी शुद्ध न होय क्योंकि जिस झूठ उपदेश से भोले जीव मिथ्यात्व मार्ग अथात् जिनाज्ञा से विपरीत प्रवृत होगये हैं उस प्रवृत होनेस जो संसारका बढ़ना उस बढ़ने का हेतु वो मिथ्या श्रवण किया जो उपदेश वो संसार में भ्रमण करानेवाला ठहरा और उस मिथ्या उपदेश का करनेवाला अनेक जीवों को आप झूठा उपदेश देकर मिथ्यात्व में गेरता है इस लिये उस मृषावाद अर्थात् झूठा उपदेश देनेवाले का आलोयना नहीं होती । क्योंकि उस चौथे वृत अर्थात् स्त्री सेवन करनेवाले के तो एक चारित्र भग हुआ था परन्तु ज्ञान दर्शन भग नहीं हुआ था इस लिये उस चारित्र की आलोयना अर्थात् प्रायश्चित् आय गया और शुद्ध होगया । और जिसने मृषावाद अर्थात् जिनाज्ञासे विपरीत उपदेश दिया तो उस विपरीत उपदेश से ज्ञान दर्शन चारित्र तीनो ही भग हो गये उस चारित्र के भग करने से तो केवल भग करनेवाले की आत्मा मलीन होती है। इसलिये उस मलीन आत्माके शुद्ध होनेका प्रायश्चित हो सकता है। परन्तु ज्ञानदर्शनका भग करने वाला है सो अपनी आत्माको मलीन करता है और अनेक जीवों

का आत्मा उस मिथ्या उपदेश से मलीन कर देता है। जो केवल उसका आत्मा मलीन होतो तब तो आलोयना लेने से शुद्ध हो जाती परन्तु उस मिथ्या उपदेश अर्थात् ज्ञान दर्शन भग करने वाले ने अनेक जीवोंका आत्मा मलीन कर दीना इसलिये उसका आलोयना नहीं। इस कारणसे भव्य प्राणियो इस हुंडा व सर्पिणी पचम काल में अनेक पुरुष मायाचारी धूर्ततासे आडम्बर सहित फिरते हैं कि जिन्होंने केवल मिथ्या उपदेश दे २ कर हजारों लाखों मनुष्योंको जिनाज्ञासे विपरीत मार्ग में प्रवृत्त कर दिया और अब भी उस तृष्णा रूपी नदीमें बहते हुए दुःख गर्भित वैराग्य वाले वर्तमान काल में अनेक फिरते हैं सो उसका संग आत्मार्थि भव्य प्राणियों को न करना चाहिये क्योंकि उनका सग करनेसे केवल ससारका बढना है न कि निर्जराका हेतु है। इस रीतिसे मृषावादका स्वरूप कहा। अब अदत्ता दानका स्वरूप कहते हैं। जो दूसरेका धन वस्तु छिपाय अर्थात् चोरी ठगाई करके लाना अथात् मालिककी वस्तु है उस वस्तु वाले मालिकके दिये बिना अथवा बिना हुक्म जो वस्तु लेना उसका नाम चोरी है इस चोरी का जो त्याग करने वाला है उसको व्यवहार अदत्ता अर्थात् चोरीका त्याग है। अब निश्चयसे अदत्ता दान कहते हैं जो पुरुष पांच इन्द्रियों (२३) विषय अथवा (८) कर्मकी वर्गणा इत्यादि पर वस्तु लेनेकी इच्छा उसको निश्चय अदत्तादान कहते हैं। इस जगह कोई ऐसी शंका करे कि इन्द्रियों का विषय वा कर्म लेनेकी इच्छा कौन करता है। उस को कहते हैं कि हे भोले भाई जिस पुरुषको जिन धर्मके वीतराग के वचनका रहस्य मालूम नहीं है वो पुरुष शुभ क्रिया करते हैं अन्तरंग रुची नहीं है कदाचित् अन्तरंग रुची भी होगी तो आत्म

स्वरूप नहीं जाना उस आत्म स्वरूप के जाने विना शुभ की वांछा वाले जीवों को बहुत होते है इसीलिये आत्म स्वरूप जाने विना शुभ क्रिया में प्रवृत्त जल्दी होते हैं सो उस शुभ से बंधा जो पुण्य उस पुण्य के ४२ भेद हैं वे ४२ भेद चार कर्मकी शुभ प्रकृता हैं जिसने व्यवहार अदत्तादान का त्याग किया परन्तु अन्तरंग पुण्य आदिक शुभ कार्य की इच्छा (वांछा) है तो उस पुरुष को निश्चय अदत्तादान लगता है और जिस पुरुष के ऊपर लिखे मुजब त्याग है उसको निश्चय अदत्तादान का त्याग है। इस रीति से अदत्तादान कहा। अब मैथुनव्रतका वर्णन करते हैं। साधु को तो सर्वथा स्त्री त्याग अर्थात् मैथुन आदि न सेवे और गृहस्थ के परणी (व्याही) स्त्रीसे मैथुन आदि करे बाकी अन्य (पराई) स्त्रीका त्याग है ऐसा जो त्याग उस का व्यवहार त्याग कहते हैं। और निश्चय त्याग उसको कहते हैं कि विषय का जो भोगना उस विषयके ममतारूप तृष्णा का जो त्याग उसका नाम निश्चय मैथुन का त्याग है क्योंकि बाह्य विषय छोड़ना तो सुगम है परन्तु अन्तरंग लालचताही छोड़ना बहुत कठिन है। क्योंकि बाह्य विषय को त्याग करने वाले तो दुःख गर्भित मोह गर्भित वैराग्य करके अथवा लौकिकमें पुजाने वाले आडम्बर दिखाने के वास्ते अनेक तरह के त्याग पचखान करते हैं और अन्तरंग में विषय सेवनेकी इच्छा अथवा माया वृत्ति से करते हैं उनको निश्चय मैथुन लगता है। इस रीति से मैथुनवृत्त कहा। अब परिग्रह प्रमाण वृत्तका स्वरूप कहते हैं परिग्रहमें धन, धान्य, दास, दासी, चौपद, घर, धरती, वस्त्र, आभरण, आदि सर्वथा त्याग तो साधु के है। और गृहस्थ के इच्छा प्रमाण अर्थात् जितनी जिसकी इच्छा होय उस मुजिब

रक्खे बाकीका त्याग करे इस रीतिसे जो त्याग सो व्यवहार परिग्रह का त्याग है। और निश्चय परिग्रहका त्याग तो उसको है कि जिसने भाव कर्म राग द्वेष अज्ञान और द्रव्य कर्म ज्ञाना- वर्णि प्रमुख आठोंका अथवा शरीर इन्द्री आदिक का परिहार अर्थात् छोडना उसी का नाम निश्चय परिग्रह का त्याग है। इस रीति से पाचों वृतका स्वरूप निश्चय व्यवहार करके कहा। सो यह पाचों वृतो का साधू के तो सर्वथा त्याग होय तब पंच महाव्रतधारी वाजे। और गृहस्थ के अनुकूलता स्थूल अर्थात इच्छा मुजिब राख कर बाकी त्याग कर उस स्थूल वृत को ही करने वाला देशवृत्ती श्रावक बाजता है। अब देशवृत्ती के हो (७) गुणवृत्त और शिक्षावृत्त हैं उनका स्वरूप भी निश्चय व्यवहार से दिखाते हैं। छठा दिशा परिमाण वृत्त कहते हैं। चार दिशा अर्थात् पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर, पाचवा ऊंची, छठी नीची, इन छओ दिशा का जो प्रमाण करना कि अमुक दिशा में इतनी इतना दूर तक आना उसके उपरान्त नहीं आना ऐसा जो त्याग करना उसका नाम दिशाप्रमाणवृत्त है। परन्तु निश्चयमें तो उसीका नाम दिशाप्रमाण है कि चारगती अर्थात् नर्क, त्रियेञ्च मनुष्य, और देवता, आदि चार गतियोंसे उदासीन परिणाम हो कर उन गतियोंका कर्मबन्धने देना केवल सिद्धावस्था को अंगी- कार करके रहे उसी का नाम निश्चय दिशिप्रमाणवृत्त है। अब भोगानुभोग सातवावृत्त कहते हैं। भोगना तो उसका है जो एक दफे भोगनेमें आवे जैसे रोटी आदिक एक दफेही खाई जाती है उसको तो भोग कहते हैं। और उपभोग उसको कहते हैं कि जो बारम्बार भोगनेमें आवे जैसे कि आभरण स्त्री आदि बार २ काम वोई भोगन में आते हैं इसलिये उनको उपभोग

उसको कहते हैं कि जो जीव अज्ञान से शुभ अशुभ कर्मका बन्ध करता है उस कर्म से अपना जीव अनेक जन्म मरण रूपी दुःख पाता है उस दुःखका हेतु मिथ्यात्व, अव्रत, कषाय, योग, आदि हैं उनसे अपने जीवको बचाना और अपने जीव को दंडने देना उसीका नाम निश्चय अनर्थक दंडव्रत है। अब नवमासामायिक व्रत कहते हैं। जो मन वचनकाय से आरंभ अर्थात् संसारी कारवाई छोड़ कर एकान्त में नियम अनुसार बैठना अथवा पुस्तक पढ़ना वाचना या माला आदिक का फेरना उसका नाम व्यवहार सामायिक व्रत है और निश्चय सामायिक उसको कहते हैं कि जो जीव अपना ज्ञान दर्शन चारित्र गुणको विचारे और सर्व जीवकी सत्तागुण एक समान जाने और सर्व जीवसे समता परणाम रक्खे और अपने समान समझे उसका नाम निश्चय सामायिक व्रत है। अब (१०) देशावगाशी व्रत कहते हैं। जो मन वचन कायकी चपलता दूर कर और एक ठिकाने अर्थात् एक मकान में बैठकर धर्म ध्यानका करना सो व्यवहार से देशावगाशी व्रत है। और निश्चय से जो देशावगाशी उसको कहते हैं कि श्रुत ज्ञान के जोरसे छः द्रव्यको जाने जिसमें से पांच का त्याग करे और केवल ज्ञायक जीव कोही ध्यावे अर्थात् ग्रहण करे उसी का नाम निश्चय देशावगाशी व्रत है। अब पौषध व्रत कहते हैं। जो चार प्रहर किंवा आठ प्रहर ... परिणाम से निरारंभ अर्थात् संसारी ... सिझाय ध्यान में प्रवृत्त है। उसका नाम पौषध व्रत है। निश्चय से पौषध ... अपना आत्माका ज्ञान ... अभिमान सर्व

होय जब अज्ञान दूर होगा तब आत्माकी अवश्यमेवपुष्टी होगी इस रीति से जो आत्मा को पुष्ट करे उसका नाम निश्चय पोषध वृत है। अब (१२) वां अतिथिसंविभाग वृत्त कहते हैं। जो पोषध के पारने अथवा सम्य सर्व काल में साधु के वास्ते अथवा जिन धर्मी श्रावक वा अपनी शक्ति के अनुसार दान का देना उसका नाम व्यवहार से अतिथिसंविभाग है और निश्चय से अतिथिसंविभाग उसको कहते हैं। शिष्यादिक अथवा अन्य साधू को अथवा गृहस्थि आदिक को ज्ञान का पढाना और उसका आत्म स्वरूप का बताना जिससे उसका जन्म मरण मिटे और मोक्ष की प्राप्ति होय। इस हेतु से ज्ञान का जो दान देना उसीका नाम निश्चय अतिथिसंविभाग वृत्त है। इस रीतिसे निश्चय व्यवहार से श्रावक के (१२) वृतों का वर्णन किया सो इस निश्चय व्यवहार सहित (१२) वृत्त धारे उस जीवको पांच वें गुण ठाने देश वृत्ति श्रावक कहना उस श्रावक के देश कहता थोडीसीही वृत्ति जिससे उसका नाम श्रावक है और सर्व वृत्ति अर्थात् सर्वथा जो त्याग उस त्याग के करने वाला यती (मुनि) (साधु) होता है। सो उस साधु के पंचमहा वृत्त कहे जाते हैं। सो उन पंचमहा वृत्त में सर्व वृत आजाते हैं। ऐसा जो निश्चय व्यवहार त्याग रूपका करना और ज्ञान ध्यान सम्वर निर्जरा में स्थिरता रूप परिणाम का रखाना उसका नाम निश्चय चारित्र है। उस चारित्र के दो मार्ग अर्थात् दो भेद हैं। १ उत्सर्ग मार्ग २ अपवादमार्ग उत्सर्ग मार्ग अर्थात् उत्कृष्ट तीक्ष्णधारा रूप परिणाम का रहना। और अपवाद उसको कहते हैं कि तीक्ष्ण परिणाम को जिस रीति से दृढ (मजबूत) रखने और उस मजबूत रखन के वास्ते कुछ अंगीकार कर के लेने जब परिणाम तीक्ष्ण वृत्ति में मजबूत हो

जाय तो फिर उसको छोड देय उसका नाम अपवाद है । उक्तंच । सघरणमि असुद्ध दुन्नवि गिन्हत देव याणहिय आउरदिठ तेण तेचेवहिय असघरणे । अब इस जगह ध्यानका स्वरूप कहते हैं सो उस ध्यान के चार भेद हैं । १ आर्त ध्यान । २ रौद्रध्यान । ३ धर्म ध्यान । ४ शुक्ल ध्यान । प्रथम आर्त ध्यान का वर्णन करते हैं कि आर्त कहता चिन्ता (सोच) फिर एकाग्र होकर मनसे जो विचारना उसका नाम आर्त ध्यान है । उस आर्त्तध्यान के चार पाये हैं । १ इष्ट वियोग । २ अनिष्ट सयोग । ३ रोगका चिंतवन । ४ अग्रसोच । प्रथम इष्ट वियोग का स्वरूप कहते हैं कि इष्ट कहता वल्लभ (प्यारी) वस्तुका वियोग होना जैसे कि माता पिता भाई भगिनी स्त्री (भार्या) पुत्र आदिक का वियोग अर्थात् दूर होना उस दूर होने से जो चिन्ता शोक पश्चाताप आदि अनेक तरह से व्याकुल रहना उसका नाम इष्ट वियोग आर्त ध्यान है । अब दूसरा अनिष्ट सयोग पाया कहते हैं कि अनिष्ट कहता खोटा दुःख के देने वाला सग होना उसका नाम अनिष्ट सयोग है । जैसे कि कलहकारी स्त्री खोटा पुत्र दुश्मन आदिका जो सयोग कहता मिलना अर्थात् एक जगह का रहना और उनका अलग न होना और उन के सयोग से दुःखका उपजना उस दुःख से जो चिन्ता शोक आदि एकाग्र मन से करना उसका नाम अनिष्ट सयोग आर्त ध्यान है । अब तीसरा रोग आर्तध्यान कहते हैं कि शरीर में रोगादि उत्पन्न होय उस रोग के उत्पन्न होने से नाना प्रकार के शरीर में क्लेश होते हैं । उस क्लेश के मिटाने की चिन्ता शोक आदि एकाग्र मन से विचारना उसका नाम रोग आर्तध्यान है । अब चौथा अग्र सोच आर्तध्यान कहते हैं कि जो आगे के कालका सोच सो अग्र सोच है सोही

दिखाते हैं कि भविष्यत् सम्वत के वास्ते ऐसा विचार है कि पिछले सम्वत में मैंने ऐसा काम किया आगे के सम्वत में अमुक काम करना अवश्य (जरूर) है। अथवा दान शील तपस्या आदिक जो शुभकरणी करता है उस शुभकरणी के फलको चिन्तवन करे कि मैं दान देता हूं। इससे मेरेको पुण्य फल होगा और उस पुण्य फल से मेरेको देवलोक मिलेगा अथवा राजादिक पदवी मिले वा सेठ साहूकार होऊंगा ऐसा जो एकाग्र मन कर के विचारना सो अग्रसोच आर्तध्यान है। इस रीति से इस आर्त ध्यान के चार पाये कहे सो आर्तध्यान तिर्यंच गतीका पहुंचाने वाला अशुभ ध्यान है और यह ध्यान पांच व गुणठाने अर्थात् देश विरति श्रावक और छठे गुण ठानेतक आर्तध्यान पैदा (उपज) होता है। इस लिये हे भव्य प्राणियों इस आर्तध्यान को छोड़ने का यत्न (उपाय) करो। अब रौद्रध्यान का स्वरूप कहते हैं कि रौद्र कहता महा कठोर भयंकर जो परिणाम से एकाग्र चिन्तवन करना उसका नाम रौद्र ध्यान है। सो इस रौद्र ध्यानके भी चार पाये हैं । १ हिंसानुबन्धि अर्थात् जीवोंकी हिंसा बहुत करे। २ मृषानु बन्धि अर्थात् झूठ बहुत बोले । ३ चोरान बन्धि अर्थात् चोरी बहुत करे। ४ परिग्रह रक्षान बन्धि अर्थात् परिग्रहको बहुत इकट्ठा करना। अब इन चारों पायोंको विस्तारसे वर्णन करते हैं। पहला जो हिंसानु बन्धि रौद्र ध्यान का करनेवाला जीव अनेक जीवोंको मारकर अपने चित्त (मन) (दिल) में बड़ा खुशी होता है और जीव मारनेके वास्ते शिकार आदि खेलनेके वास्ते वन (जंगल) में जाय कर एकाग्र चित्त होकर जीवोंको मारता है और खुशी होता है और कहता है कि देखो मैंने कैसा निशान मारा सब देखतेही रहगये क्योंकि

दूसरेको मारना बडा पराक्रम (बहादुरी) का काम है। इस रीतिसे जीवोंको मारकर खुशी होना अथवा दूसरा कोई जीवोंको मार रहा है उसको देखकर खुशी होना अथवा संग्राम (युद्ध) की बात कर और उसको बहुत अच्छा कहे इत्यादि अनेक तरहसे हिंसा अर्थात् जीवोंको मारे अथवा मारतेको देखकर खुशी होय उसका नाम हिंसा रुद्र ध्यान है। अब दूसरा पाया कहते हैं। जो पुरुष झूठ बोल कर मनमें खुशी होय कि मैं कैसा झूठ बोलता हूं और मेरे झूठको कोई नहीं पकड़ सकता है। इस रीतिसे मैं बातें करता हूं कि कैसाही बुद्धिमान पुरुष होय परन्तु मेरे झूठको न समझसके। ऐसा जिस पुरुषके मनमें झूठ बोलनेका परिणाम है उसका नाम मृषानुबन्धि रुद्र ध्यान है। अब तीसरा चोरी रुद्र ध्यान पाया कहते हैं। जो पुरुष चोरी करे अथवा ठगाई करे और मनमें खुशी होय और कहे कि देखो मेरी बराबर जोरावर कौन है कि मैं दूसरोंका माल खाजाऊं और मेरा कोई कुछ नहीं कर सकता पराया माल लाना ही मर्दोंका काम है। इस रीतिका परिणाम है जिसका उसका चोरानुबन्धि रौद्रध्यान कहते हैं। अब चौथा परिग्रह रक्षक रुद्रध्यान कहते हैं। जो पुरुष परिग्रह अर्थात् धन धान्य आदि बहुत इकट्ठा करे और इस इकट्ठे करनेहीके लालच अर्थात् तृष्णामें बना रहे। और उस परिग्रह इकट्ठे करनेके वास्ते अनेक तरहसे झूठकपट करे और मनमें अहंकार धरे कि मेरी बराबर कौन है कि जो मेरा सी वस्तु इकट्ठा करके संचय करे और मैं जितना अधिक परिग्रह इकट्ठा करूंगा उतना ही मेरे बेटा पोता आदिकके काम आवेगा और वे लोग मेरेको अच्छा कहेंगे कि हमारे बाप दादे ऐसे होगये थे। इस वास्ते सून धन आदिकको इकट्ठा तो करे और धर्मके काममें एक पैसा भी न लगावे आप

खाय न दूसरेको खिलावे लोगोंमे बैठकर बडी २ बातें बनावे जना है कृपण और धनवाला कहावे मरेगा जब पल्ले कछु नहीं जाय इसी जगह सब ठाठ पडा रह जावे। इस रीति से जो परिग्रहका रखा करने म परिणाम है जिसका उसका नाम परिग्रह रक्षानुबन्धि रौद्रध्यान है। इस रीति से इस रौद्रध्यान के चार पाय कहे। सो यह रौद्रध्यान महाखोटा नर्क गतिको ले जाने वाला है और यह रौद्रध्यान पाच वे गुण ठाने अर्थात् देश विरति श्रावक के चारा पाये रौद्रध्यान है। और छठे गुण ठाने वाले के एक हिंसा रौद्रध्यान प्रथम पाया किसी जीवमें होता है और सर्व मे नहीं। इसलिये यह रौद्रध्यान अशुभ कर्म अर्थात् पाप का हेतु है इसलिये हे भव्य प्राणियों ! इस रौद्रध्यान का छोडो। इस रीति से यह दो अशुभ ध्यान कहे सो कहे। अब आगे + दो शुभ ध्यान हैं उनका भी वर्णन करते हैं। प्रथम धर्म ध्यान कहते हैं जो व्यवहार क्रिया रूप कारण सो धर्म अथवा श्रुत ज्ञान और चारित्र उपादान रूप साधन धर्म अथवा रत्न त्रयी अर्थात् ज्ञान दर्शन चारित्र भेद रूप से उपादान शुद्ध व्यवहार उत्सर्ग अनुयायी सो अपवाद धर्म ध्यान जानना सो इस धर्म ध्यानके भी चार पाये होते हैं। १ आज्ञा विचय अर्थात् वीतरागकी आज्ञा माने।२ अपाय विचय। ३ विपाक विचय। ४ संस्थान विचय। प्रथम आज्ञा विचय धर्म ध्यान कहते हैं। जो वीतराग देवकी आज्ञा है कि नित्य, अनित्य, एक, अनेक, सत्य, असत्य, आदि स्याद्वाद रीतिसे निश्चय, व्यवहार, उत्सर्ग, अपवाद, कारण, कार्य, जिस रीतिसे श्रीअर्हन्त वीतरागदेवने कहा है उसी रीतिसे कहना सुनना मानना और अपने अन्तरगमें उस आज्ञाकीरुची सहित विचार करना कि परमेश्वर की इस आज्ञासे विपरीत चलनेसे मेरा आत्मा

ससार होगा ऐसा है। अब जिसके चित्तमें और केवल श्रीवीतराग की आज्ञाहीका प्रधान गिने और उस आज्ञाहीको विचार करे उसका नाम आज्ञा विचार धर्म ध्यान है। अब दूसरा अपाय विचय धर्म ध्यान कहते हैं। जो जीवमे अशुद्धतासे कर्म सयोग ससार अवस्थामें अनेक तरहका अपाय कहता आपदा अर्थात् दु ख और दु ख का कारण अज्ञान राग द्वेष कषाय आश्रव पाप पुण्य आदि यह मेरा नहीं और में इनसे न्यारा हूं मेरेमे तो अनन्त ज्ञान दर्शन चारित्र वीर्य है। और मैं शुद्ध बुद्ध अजर अमर अविनाशी हू और मैं आदि अनन्त करके रहित अक्षय अनश्वर अचल अकल अमल अगम्य अगम अनामी अरूपी अकामी अनन्धक अतुल्य अनुदारक असत्त कहता कर्मोकी सत्ता करके रहित अयोगी अभोगी अरोगी अवेदी अच्छेदी अभेदी अलेपी अकषाइ अशरीरी अलख निरजन अभाषी अनाहारी अव्याबाध अनअवगाही अगुरु लघु अपरणामी अतीन्द्री अप्राणी अव्यापी सर्वव्यापी अकम्प अपर अविरुद्ध अनाश्रव अबाल अतरुण अवृद्ध अपरम्पार अपापी अपुण्यी अक्रोधी अमानी अमायी अलोभी लोकालोक ज्ञायक शुद्ध सचिदानन्द मेरा जीव है। इस रीति से जो एकाग्र ध्यान उसका नाम अपाय विचय कहते ऊपर लिखे हुए राग द्वेष आदि आपदा को छोड कर एकाग्र चित्तसे नीचे लिखे हुए अपने स्वरूप को विचारना उसका नाम अपाय विचय धर्म ध्यान है। अब विपाक विचय धर्म ध्यान कहते हैं। विपाक कहता कर्मोका जीव से अलग करके विचारना उसका नाम विपाक विचय है सो दिखाते है कि जो ऐसा विचार करे कि मेरा जीव अनन्त ज्ञान दर्शन चारित्रमयी है परन्तु कर्मों के वश से दु ख पाता हू

क्योंकि मेरा ज्ञानादि गुण को तो ज्ञानावरणीय कर्म ने दवाय रक्खा है और दर्शनावरणीय कर्मने दर्शन गुणको दवाय रक्खा है। इस रीति से आठ कर्मोंने आठ गुणको दवाय रखा है। इसलिये जो दुःख सुख हैं सो कर्मो का भोग है इस वास्ते दुःख उत्पन्न होय तो दिलगीर अर्थात् सोच नहीं करना क्योंकि कर्मोंका भोग है। सो कर्म भोगे ही छुटेगा इसलिये खेद नहीं करना। और सुख उत्पन्न होय तो हर्ष अर्थात् खुशी नहीं करना। क्योंकि यह सुख भी कर्मों का भोग है इसलिये मेरेको हर्ष करना भी ठीक नहीं क्योंकि यह दुःख दोनोंही मेरे आत्मगुणको दवाने वाले हैं। ऐसा विचार उसका नाम विपाक विचय धर्म ध्यान है। अब चौथा संस्थान विचय धर्म ध्यान कहते हैं। संस्थान कहता (१४) राजप्रमाण लोक है (नोट) इस चौदे राज कोही वैष्णव में सत (१४) भवन कहते हैं और मुसलमान लोक (१४) तबक कहते हैं इस लोकका जो स्वरूप उसका विचार करे कि तिस १४ राज में (७) राज अधो अर्थात् नीचा लोक है। सो उस नीचे लोकमें ही नर्क आदिक है। और (१८) हजार योजन मनुष्य लोक तिर्छा है तिस के ऊपर कुछ न्यून (७) राज ऊर्द्ध लोक अर्थात् ऊंचा है उस ऊंच लोक में सूर्य चन्द्रमा ज्योतिषी और विमानिक देवता बसते हैं उन वैमानिक देवता के ऊपर सिद्ध क्षेत्र है उस सिद्ध क्षेत्र के विना इस १४ राजलोक में भ्रमण करने में मेरे को अनन्ता काल बीता और सर्व लोक में मैंने जन्म मरण करके स्पर्श किया है सो इस भ्रमण को छोड कर सिद्ध क्षेत्र में वसना अपने को ठीक है। इस रीति का जो विचार सो संस्थान विचय धर्म ध्यान है। इस रीति से धर्म ध्यान के चार पाये कहे। यह धर्म ध्यान चौथे गुण ठाने से [illegible] गुणठाने पर्यन्त है। अब शुक्ल

ध्यान का स्वरूप कहते हैं। शुक्ल कहता निर्मल शुद्ध दूसरे के अवलम्बन विना जो ध्यान करना उसका नाम शुक्ल ध्यान के चार पाये हैं। १ प्रथक्त्व वितर्कसप्र विचार। २ एकत्व वितर्क अप्र विचार। ३ सूक्ष्म अप्रतिपाती। ४ उच्छन्न क्रियानिवृता। यह चार भेद के नाम कहे। अब पहला भेद कहते हैं कि प्रथक्त्व कहना जुदा २ वितर्क कहता तर्क सहित सपार विचार कहता अपने आत्म गुणग्राही है विचार जिसमें उसका नाम प्रथक्त्व वितर्क सपरि विचार है सो हा दिखाते हैं कि जीवसे अजीवको जुदा करना अथवा विभावसे स्वभाव जुदा करना अर्थात् प्रथक्पन अपने स्वरूप के विषय रमण अथात् आत्म द्रव्य के गुण तथा पयाय अथवा द्रव्य वा पर्याय को जुदा २ वितर्क कहता तर्क सहित विकल्प पने मे विचार अर्थात् द्रव्य गुण पर्याय को आपस में सक्रमण अर्थात् एक का एक में मिलावे इस राति से स्वधर्म के विषय धर्मान्तर का भेद करे सो प्रथक्त्व कहिये उस प्रथकत्व में जो वितर्क कहता श्रुति ज्ञान आधीन उपयोग सपरि विचार कहता विकल्प उपयोग एकत्व यापी अर्थात् एक आत्म गुणको विचारे जिसके बाद दूसरे आत्म गुण का विचार इस राति से जो एकाग्र चित्तका होना और उस आत्म धर्म में हा निर्मल विकल्प अर्थात् आत्म गुण का ही है विचार जिस मे ऐसा जो थिरता रूप आत्म रमण एकाग्रता का होना उसका नाम प्रथक्त्व वितर्क सप्र विचार शुक्ल ध्यान प्रथम पाये में अपना सत्ताको ध्यावे उसको प्रथम पाया शुक्ल ध्यान का होय यह पाया (८) वें गुण ठाने से लेकर (११) व गुण ठान तक है। अब दूसरा पाया शुक्ल ध्यान का कहते हैं कि जो जाव अपने गुण पर्याय की एकता करके ध्यावे कि मेरा गुण पर्याय जाव से जुदा नहीं

और गुण पर्याय से जीव जुदा नहीं यह सब एक है क्योंकि मेरा
भाव सिद्धस्वरूप एक है मेरे से जुदा कोई नहीं ऐसा जो एक
त्व पने स्वरूप तन्मय एकत्व पने ध्यावे वितर्क कहता श्रुत ज्ञा
कोई अवलम्बन (सहारा) पने अपरि विचार कहता विकल्प कर
रहित दर्शन ज्ञान चारित्र कारण तिनो रत्न श्रय की एकता ए
समय में कारण कार्य पने का जो ध्यान और वीर्य उपयोग
एकता में हो एकाग्रता का होना उसका नाम एकत्व वितर्क अ
विचार नाम शुक्ल ध्यान का दूसरा पाया (१२) वे गुण ठा
में होता है और इस पाये में श्रुत ज्ञान अवलम्बी पना है क्यों
अवधीया मन पर्यव ज्ञान के उपयोग वाला जीव इस शु
ध्यानके दूजे पायेको नहीं कर सकता है क्योंकि अवधिज्ञान और म
पर्यव ज्ञान अवलम्बन विना है और शुक्ल ध्यानका दूसरा पाया
अनुयायी अर्थात् श्रुत ज्ञानका अवलम्बन है। इसलिये इस शु
ध्यानको दूसरे पायेमे चार घनघाती कर्मकी क्षय करके अ
दूर करके पीछे (१३) गुणठाने ध्यान अन्तरीकपने वर्ते है ।
(१३) व के अन्त और चवदवें गुणठानेमें दो पाये शुक्ल ध्या
के होते है सोही दिखाते हैं । जिस वक्तमें तीसरा पाया सू
क्रिया अप्रतिपाती शुक्ल ध्यानको जीव करता है उस वक्तमें स
मन वचन काययोग कोरुध अर्थात् रोके और सैलसी करण क
अयोगी होय और अप्रतिपाती कहता निर्मल वीर्य अचलता
परिणामका होना उसका नाम सूक्ष्म क्रिया अप्रतिपाती शु
ध्यानका तीसरा पाया कहते हैं (नोट) सैलेसी नाम पर्वत
जैसे पर्वत अचल होता है उसी रीतिसे होय । इस शुक्ल ध्या
तीसरे पायेके ध्यान करनेवाले जीवके सत्तामें जो (८५) प्र
रही थी उसमेंसे (७२) प्रकृतीका क्षय करे अर्थात् दूर

इसगेतिस तीसरा पाया कहा। अब उच्छिन्न क्रिया निवृति चौथा पाया कहते हैं। जिस जावन योग निरोध क्रिया उस योग निराधके बाद (१३) प्रमता दूरकरे और सर्व क्रियास रहित होकर अक्रिय होता है उसका नाम उच्छन्न क्रिया निवृति चौथा पाया है। और इस चौथ पायका ध्यान धरनेवाला जीव अवगाहना अर्थात् शरीर मानमें स तीसराभाग घटाव अर्थात् दूर करक यहास (७) राज ऊपर अथात् ऊंचा लोकके अन्त सिद्ध क्षेत्रम सिद्ध होता है अब इस जगह ऐसा शका होतीहै कि चवदह वें गुण ठाने मे उच्छिन्न क्रिया कहवा अक्रिय है तो ७ राज ऊंचा अर्थात् सिद्ध क्षेत्र में जाने की क्रिया क्यों करता है। इस शका का समाधान ऐसा है कि सिद्ध तो अक्रिय है परन्तु पूर्व प्रेरणा के योग से अथवा जल तुम्बिका न्याय स जीव म ऊपर जाने का गुण है और धर्मास्तिकाय मे प्रेरणा गुण है इस लिय कर्म रहित जीव मोक्ष में जाय कर स्थिर रहे। फिर भी कोई ऐसा शका करे कि आगे ऊंचा अलोक में क्यों नहीं जाय। तिस शका का ऐसा समाधान है कि अलोक में धर्मास्तिकाय नहीं जाता। फिर कोई शका कर कि भला ऊंचा नहीं जाय तो नीचा क्या नहीं आता। इस तर्क का समाधान ऐसा है कि जाव कर्म करके रहित है इस लिये हलका होन से जीव नीचा नहीं आता। फिर भी कोई शंका कर कि आवणा अथवा बाया क्या नहीं जाता। इस शका का ऐसा समाधान है कि उस जीव की कोई प्रेरणा करनेवाला नहीं और सिद्ध जीव अकम्प अक्रिय है। फिर भी कोइ पूछे कि सिद्ध का कर्म क्यों नहीं लगता है। उस पूछनेवाले का कहना चाहिये कि हे भोले भाई कर्म तो अज्ञान से लगता है और उस जीवने अज्ञान को दूर करके आत्म ज्ञान को प्रगट कर लिया है इस लिय कर्म नहीं लगता है। इस

राति से शुक्ल ध्यान के चारों पायो का वर्णन किया । अथ दूसरा राति के चार ध्यान आत्मार्थी को और भी दिखाते हैं सो पेश्तर उनके नाम लिखाते हैं । १ पदस्थ । २ पिन्डस्थ । ३ रूपस्थ । ४ रूपातीत । इन चारों ध्यानों के कोई पाये नहीं हैं । सो इन ध्यानों के पदो का अर्थ सहित वर्णन करते हैं । प्रथम पदस्थ कहता । अर्हन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधू, इन पाचो पदोंको पच परमेष्टी कहते हैं । इस पच परमेष्टी गुणों का जो विचार सो पदस्थ ध्यान है । अब दूसरा पिंडस्थ ध्यान कहते हैं । पिन्ड कहता शरीर में अर्हन्त आदि पच परमेष्टी को अपनी आत्मा में घटावे कि यह अर्हन्त सिद्ध आचार्य उपाध्याय साधू के गुण मेरी आत्मा में हैं ऐसा विचारे अथवा पिन्ड कहता अपने शरीर में चवदे राजका भाव विचारे अथवा कर्म आदिकका विचार करे कि इन कर्मों से मेरा यह शरीर बना है । अथवा इस पिन्डस्थ ध्यान में प्राणायाम आदिका भी विचार है सो इस पिन्डस्थ ध्यान का विशेष वर्णन हमारा किया हुआ (द्रव्य अनुभव रत्नाकर) में देखो इस जगह तो इस आगमसार ग्रन्थ के अनुसार प्रक्रिया दिखाई है । अब तीसरा रूपस्थ ध्यान कहते हैं कि जो रूप में यह मेरा जीव अरूपी अनन्त गुणी है । ऐसा जो ध्यान वह रूपस्थ ध्यान है इन तीनों ध्यानों को तो धर्म ध्यान मे गिनते हैं । अब चौथा रूपातीत ध्यान कहते हैं । जो जीव एकाग्र चित्त वृत्ती होकर ऐसा विचारे कि मैं निरंजन निर्मल सकल्प विकल्परहित अभेदी एक शुद्ध सत्‌चित् आनन्द अर्थात सच्चिदानन्द रूपसिद्ध अविनाशी अचल हूं । ऐसा जो ध्यान इसका नाम रूपातीत ध्यान है । इस ध्यान में गुण ठाना, मार्गणा, नय, निक्षेपा, प्रमाण,

नहीं है और मैं भी किसी का नहीं हूं। यह माता पिता पुत्र कलत्र आदि सर्व कर्मों के संयोग से इकट्ठे हो जाते हैं परन्तु मेरा कोई नहीं है और मैं भी इनका नहीं हूं। ऐसा जो विचार उसका नाम अन्यत्व भावना है। अब छठी अशुची भावना कहते हैं। यह शरीर अशुची है क्योंकि देखो इस शरीर में हाड़ मांस मल मूत्र के सिवाय और कुछ नहीं है। दूसरे नाना प्रकार के रागादिक भी उत्पन्न होते हैं इसलिये रे जीव! तू इस अत्यन्त अशुची रूप शरीर से न्यारा है। सो तू अपने स्वरूपको विचार और इस अशुची शरीरको छोड़ ऐसा शरीरके ऊपर अशुची का जो विचार अर्थात् चिन्तवन जिसका उसका नाम अशुची भावना है। अब सातवीं आश्रव भावना कहते हैं आश्रव नाम आनेका सो उस आश्रव के कारणभूत कौन हैं कि अज्ञान राग द्वेष प्रमुख सर्व आश्रव रूप हैं सो यह दुख देन वाले हैं ऐसा है विचार जिसका उसका नाम आश्रव भावना है। आठवीं सम्वर भावना कहते हैं सम्वर नाम दूसरे को न आने देय अर्थात् जिस वक्त जीव ज्ञान ध्यान प्रवृत्त है उस वक्तमें जीव नया कर्म नहीं बांधे तब सम्वर भावना होती है। अब निर्जरा भावना कहते हैं। ज्ञान सहित जो क्रिया है सो निर्जराका कारण है ऐसा विचार है जिसका नाम निर्जरा भावना है। दशमी लोक भावना कहते हैं। लोक कहता (१४) राजका जो स्वरूप विचारे उसका नाम लोक भावना है। इग्यारहवीं बोधि दुर्लभ भावना कहते हैं। बोधि कहता बुद्धि अर्थात् समकित सहित यथावत ज्ञानकी प्राप्ति जीवको होनी मुश्किल है। क्योंकि इस संसार में जीवको भ्रमण करता अनन्ता काल बीत गया। परन्तु समकितकी प्राप्ति न हुई ऐसा है विचार जिसका उसका नाम बोधि दुर्लभ भावना है। बारहवीं धर्म दुर्लभ-

भावना कहते है। धर्मका कहनेवाला गुरू शुद्ध आगम अनुसार उपदेश न्य और यथावत आत्म स्वरूपको दिखायकर सचे धर्मकी पहिचान करानेवाले गुरूका सयोग मिलना मुश्किल है ऐसा है विचार जिसका उसका नाम धर्म दुर्लभ भावना है । इसरीतिसे (१०) भावनाका स्वरूप कहा। इसरीति से चारित्रका सम्पूर्ण स्वरुप कहा सो है भव्यप्राणियों ऊपर लिखी रीति अनुसार समकित सहित ज्ञान चारित्र मोक्षका कारण है। इस लिये विशेष उद्यम करना चाहिये। कदाचित् ऊपर लिखे अनुसार ज्ञान चारित्र न पले तो भी श्रेणिक राजाकी तरह सदहणा (श्रद्धा) रखना चाहिये क्योंकि जो श्रद्धा शुद्ध है तो मोक्ष नजदीक है । श्रद्धा अर्थात् समीकत विना ज्ञान ध्यान क्रिया तृत्त पच खान सर्व निष्फल है इस लिये शुद्ध श्रद्धा रखना क्यों कि जिनकी श्रद्धा शुद्ध है उनका सर्व काम शुद्ध है इस श्रद्धा शुद्ध रखनेके वास्ते श्री आगमोंमे कहा है सोहा दिखाते हैं। गाथा। जमक्केताकिरइ अहवान सक्के इत हुय सद्दहइ सद्द हमाणा जीवो पायइ अय राम ठाण ॥ १ ॥ अर्थ। हे जीव तु करसक सो कर कदाचित् तेरे से जो न हो सक तो जैसा श्री वीतराग सर्वज्ञ न्यने कहा है वैसी ही श्रद्धा रख क्योंकि शुद्ध श्रद्धा रखने से जीवको अजर अमर मोक्ष पदकी प्राप्ति होती है। इस लिय श्री वीतराग सर्वज्ञ देवका कहा हुआ जो जीव अजीव पुण्य, पाप, आश्रव, सम्वर, निर्जरा, बन्ध, मोक्ष, यह नवतत्त्व हैं। तिन नवतत्त्व में एक जीव तत्त्व मोक्ष का कारण है। और सम्वर निर्जरा दो गुण हैं । इस लिये जीव सम्वर निर्जरा और मोक्ष यह चार उपादेय अर्थात् ग्रहण करने क योग्य हैं। दूसरे अजीव पुण्य पाप आश्रव बन्ध यह पांच हेय अर्थात् छोड़ने के योग्य हैं। ऐसा है परिणाम जिसका

उसका सम्यग् ज्ञान कहते हैं। सो समकित और ज्ञान शामिल ही होता है क्योंकि श्री अनुयोग द्वारसूत्र में ऐसा कहा है। गाथा। नायम्मिगिण्हियव्वे अगिण्हियव्वे अइछ अत्थंमि जइयव्व मेवइय जो सोवय एसोन उताम। अर्थ। ज्ञान से द्रव्य जाने और लेने के योग्य होय सो लेय और छोड़ने के योग्य सो छोड़े ऐसा जो उपदेश उसका नाम नय उपदेश है। इस रीति से शुद्ध श्रद्धा रक्खे। अब शुद्ध श्रद्धा अर्थात् समकित की (१०) रुचिका वर्णन करते हैं। सो पहलेतर इनके नाम कहते हैं। १ निसर्ग रुचि २ उपदेश रुचि। ३ आज्ञा रुचि। ४ सूत्र रुचि। ५ बीज रुचि। ६ अभिगम रुचि। ७ विस्तार रुचि। ८ क्रिया रुचि। ९ संक्षेप रुचि। १० धर्म रुचि। अब इनका विस्तार कहते हैं कि रुचि नाम है चाहना का। निसर्ग रुचि उस को कहते हैं कि निश्चय नय करके नाव अनाव नव तत्त्व जाने और आश्रव का त्याग करे। सम्बर का ग्रहण करे। और श्री वीतरागके कहे हुए छ द्रव्यको द्रव्य क्षेत्र काल भाव करके जाने अथवा नामादिचार निक्षेपा नैगमादि सात नयका जान और यथा वत् अपनी बुद्धिसे शुद्ध सरदहे वीतरागका कहा हुआ पदार्थ यथा वत् माने और जो वीतरागने कहा है उसका सहत अर्थात् सत्यक है ऐसी चाहना विना उपदेशके है जिसको उसको निसर्ग रुचि कहते हैं। अब उपदेश रुचि कहते हैं। ऊपर लिखे नव तत्त्व अथवा छ द्रव्य गुरु उपदेशसे जानकर होकर सर्दहे है अर्थात् माने उसका नाम उपदेश रुचि है तीसरी आज्ञा रुचि कहते हैं। जिस पुरुषका रागद्वेष अर्थात् मोह और अज्ञान दूर हुआ है और चार घातीकर्मको दूर करके केवल ज्ञान केवल दर्शन उत्पन्न किया है ऐसा जो अर्हन्त देव वीतराग अपने पाताकी जो आज्ञा है उस

नाका है रुचि जिसका उसका नाम आज्ञा रुचि है । अब चौथी
। रुचि कहते हैं । जिस जीवको सूत्र पढ़ना श्रीवीतरागके वचन
मुसार जो श्रीगणधर आदिकोंने रचना करी है उस रचनाके
नुसार अर्थात् आगमके लिखे हुए वचनको मानना उसका नाम
। रुचि है । सो सूत्रोंके नाम लिखते हैं । प्रथम (११) अंगके
म लिखते हैं । १ आचारांग । २ सूयगडांग । ३ ठाणांग । ४
वायांग । ५ भगवती । ६ ज्ञाता धर्म कथा । ७ उपासकदशा । ८
तगडदशा । ९ अनुत्तरोववाई । १० प्रश्न व्याकरण । ११ वि-
क । यह (११) अंग जानना । बारहवां अंग दृष्टिवाद
सम (१४) पूर्व थे परन्तु अब विच्छेद हो गये हैं ।
र (१२) उपांगके नाम लिखते हैं । १ उववाई । २ रायपसेणी । ३
जाभिगम । ४ पन्नवणा । ५ जम्बू द्वीप पन्नत्ती । ६ चन्द्र पन्नत्ती
७ सूर पन्नत्ती । ८ कप्पीया । ९ कप्प विंडसीया । १० पुप्फीया
११ पुप्फ चूलीया । १२ वह्निदशा । यह (१२) उपांग जानना ॥
छेदके नाम । १ व्यवहार । २ बृहत्कल्प । ३ दशाश्रुत स्कन्ध
४ निशीथ । ५ महा निशीथ । ६ जीत कल्प ॥ (१०) पयन्नाके
नाम ॥ १ चौसरण । २ संथारा । ३ पवेसा । ४ तन्दूल वियाली
५ चन्द विजय । ६ गणिविज्जय । ७ दविन्द थुय । ८ वीर थुय
९ गच्छाचार । १० जोतिष्करंड ॥ (४) मूल सूत्रोंके नाम ॥ १
आवश्यक । २ दशवैकालिक । ३ उत्तराध्ययन । ४ ओघनिर्युक्ती ।
ग चुलिका सूत्र ॥ १ नन्दी । २ अनुयोगद्वार । ये आगम (सूत्र)
निर्युक्ती, भाष्य, चूर्णी, टीका, पंचांगका वचन माने और आगम
पुनसेका वा पढ़नेकी बहुत रुचि होय उसको सूत्र रुचि कहते हैं ।
अब चौथी बीज रुचि का स्वरूप कहते हैं । जो जीवगुरु मुखसे
एक पदका अर्थ सुनकर अनेक पदके अर्थको जाने उसका नाम

बीजरुचिहै । अब अभिगम रुचि कहते हैं । जो सूत्र सिद्धान्त अर्थसे जाने और अर्थको विचारे और पढने पढानेकी अत्यन्त चाहना होय जिसको उसका नाम अभिगम रुचि है । अब विस्तार रुचि कहते हैं । छ द्रव्यजाने उसका गुण जाने पर्याय जाने और इन सबको प्रमाण अर्थात् प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, और आगम, आदिनय, युक्ति, हेतु करके जाने और उसीरीति की श्रद्धारक्खे उसका नाम विस्तार रुचि है । अब क्रिया रुचि कहते हैं । ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप, विनय, सुमति, गुप्ती, आदि बाह्य क्रियासे बहुत रुचि है जिसको उसका नाम क्रिया रुचि है। अब संक्षेप रुचि कहते हैं। जो ज्ञानसे थोड़ा अर्थ सुने और बहुत अर्थ को जाने और उस अर्थके जानने से कुमति कदाग्रह न पड़े और दुःखगर्भित मोह गर्भित वैराग्य वाले आडम्बरी जोकि अपने पूजाने के वास्ते अनेक तरह की विटम्बना कर रहे हैं । उनके फन्द म न आवे और जिन मतसे यथावत प्रीति मान उसका नाम संक्षेप रुचि है । अब धर्म रुचि कहते हैं । पंचास्तिकायका स्वरूप जानकर श्रुत ज्ञानसे चारित्र छोड एक स्वभाव अन्तरंग सत्ताको सरदहे अर्थात् माने उसका नाम धर्म रुचि है । इस रीतिसे (१०) रुचिका स्वरूप कहा । अब समकितीके (८) गुण कहते हैं सो पेश्तर उनके नाम लिखते हैं । १ निशंका गुण । २ निकंखा गुण । ३ विदिगिच्छा गुण । ४ अमूढ दृष्टीगुण । ५ उपवृंहण गुण । ६ स्थिरीकरन गुण । ७ वच्छलता (दूसरे सर्व जीवोंको अपने समान जाने और सबकी रक्षाकरे और उनको सहायता दे) गुण । ८ प्रभावना गुण । अब इन आठों गुणोंका किंचित् भावार्थ लिखते हैं । जिनागम (शास्त्र) (सिद्धान्त) में सूक्ष्म अर्थ कहा है उस अर्थ को सत्य माने उसमें कोई तरहका सन्देह करे नहीं और उपदेश

देन में अथवा धर्म पालनेमें (७) भयमें से कोई तरहका भय न कर उसका नाम निशंका अर्थात् निर्भय गुण कहते हैं । दूसरा निकंखा गुण यह है कि । किसी चीज की चाहना अर्थात् कांक्षा न रक्खे उसका नाम निकंखा गुण है सो ही दिखाते हैं कि जो शुभ करणी के करने से पुण्य रूप फल की चाहना करके जो शुभ क्रिया का करना उस क्रिया की इच्छा है जहां इच्छा है तहां कर्म बन्धन है इसलिये उस पुण्य रूप फल की नहीं है चाहना जिस को निकंखा गुण कहते हैं । अब वितीगिच्छा गुण कहते हैं । जो शुभ अशुभ पुद्गल है सो एक सरीखा है उन दोनों में हर्ष शोक न करे और उन दोनों पुद्गलों को देख कर दुर्गन्ध में ग्लानि और सुगन्ध में हर्ष न करे क्योंकि पुण्य के उदय से शुभ पुद्गल मिलकर सुख देता है सो उस में अहंकार आदि न करे और पाप के उदय से अशुभ पुद्गल मिल कर दुःख प्राप्ति होता है सो उस दुःख से खिल गीर नहीं होना इन दोनों तरह के पुद्गलों को एक सरीखा समझना उसी का नाम वितीगिच्छा गुण है । अब ४ अमूढ दृष्टि गुण कहते हैं । अमूढ कहता मूर्खतापन नहीं है जिस में ऐसी है दृष्टि जिसकी उसका नाम अमूढ दृष्टि है सो यह अमूढ दृष्टि वाला आगम में कहे हुए सूक्ष्म विचार निगोद आदि के सुनकर और छः द्रव्यों की सूक्ष्म रीति को सुनता हुआ घबराय (अमूझे) नहीं जो उस से समझा जाय उसको तो समझ लेय और जो उसकी समझ में न आवे उसको यथावत् माने सन्देह न करे क्योंकि वीतराग का वचन सत्य है ऐसा है गुण जिस में उसका नाम अमूढ दृष्टि गुण है । अब ५ उपबृंह गुण कहते हैं । जीव अपने गुणको छिपावे नहीं क्योंकि जीव में अनन्त ज्ञानादि गुण हैं जैसी शुद्ध सत्ता है तैसी

हो यह और रागद्वेष आदि कर्म की उपाधि है और इसउपाधि से न्यारा है। अब छिरा करण गुण कहते हैं। अपना परिणाम अपने आत्म ध्यान में स्थिर रखने हिग नहीं अथवा कोई दूसरा अन्य प्राणी धर्म से गिरता होय उस अन्य जीव की सहायता दे कर अथवा उपदेश आदि अनेक रीतिसे उसको स्थिर कर उसका नाम स्थिरी करन गुण है। अब सातवां वात्सल्यता गुण कहते हैं जिन पुरुषोंसे अपनी ज्ञान ध्यान तप पडिक्रमना सामायक आदि क्रियामें भेंट होय और उनमें अपनी श्रद्धामें कोई तरहका फर्क न होय अर्थात् एक श्रद्धा होय उसका नाम साधर्मी है। उन साधर्मीकी भक्ति का करना उसका नाम वत्सलता गुण है। अब आठवां प्रभावना गुण कहते हैं। जो वीतराग सर्वज्ञ देव अपक्षपाती परमेश्वरके धर्म की महिमा करना और शुद्ध धर्म की प्रवृत्ती कर और मिथ्यात्व को दूरकरे दर्शन गाना बाजा आदि करके धर्मात्मा कर शोभा को स्थान स्थानमें लगाय कर इकट्ठा करना वो धर्म की प्रभावना नहीं धर्म की प्रभावना वह है कि जिससे आत्म स्वरूप की प्राप्ति होय ऐसा जो ज्ञानादि गुणमय वीतराग के धर्म की जो महिमा का करना उसका नाम प्रभावना गुण है इसरीतिसे समकितके ८ गुण कहे। अब समकितके ५ भूषण कहते हैं १ उपसम भाव भूषण। २ आस्ता भूषण। ३ दया भाव भूषण ४ संवेग भूषण। ५ निर्वेद भूषण। अब इन पांचोंका अर्थ करते हैं। प्रथम उपसम भाव भूषण वाला जीव प्रथम तो किसी प्राणीसे कषाय अर्थात् कलह आदि कर नहीं कदाचित् कोई कर्मके संयोग से कलह आदिक हो भी जाय तो उस कलह को तुरत मिटावे और मनमें पश्चाताप करे और मिटाय कर शल्य अर्थात् कोई

नरहका विरोध मनमें न रक्खे उसका नाम उपसमभाव भूषण है। अब आस्ता भूषण कहते हैं। जो श्री वीतराग सर्वज्ञ देव अपक्षपाती विसम्वाद के बिना जो आगमों मे आज्ञा कही है उस आगम के बचन के ऊपर शुद्ध प्रतीत का रखना और अपनी शक्ति अनुसार उसकी आज्ञा में चलना और आगम के ऊपर आस्ता रखना उसका नाम आस्ताभूषण है। अब दया भूषण कहते हैं। सब प्राणी भूत मात्र को अपने समान जान कर उन की रक्षा करे और जहा तक बने वहा तक अपनी शक्ति अनुसार किसी भूत प्राणी को दुःख न देय उसका नाम दया भूषण है। चौथा सम्वेग भूषण कहते हैं। माता पिता पुत्र कलत्र धन धान्य आदि में उदास होकर उनको छोड़े फिर शरीर इन्द्रिय आदिक से उदास होकर उनको विषयादिक में न प्रवृत होने देना उसका नाम सम्वेग भूषण है। अब पांचवा निर्वेद भूषण कहते हैं। इस संसार में शरीर इन्द्रिय आदि के सुख जीव ने अनन्तिवार भोगे हैं परन्तु तृप्त न हुआ केवल दुःख का कारण हुआ क्योंकि यह शरीर इन्द्रिय के विषय आदिक ही जन्म मरण कराते हैं इसलिये रे जीव ! तेरे लायक यह शरीर इन्द्रिय आदिक नहीं तेरा एक चिदानन्द मोक्ष मई अतीन्द्रिय आत्म सुख वो सुख तेरा है और कोई तेरा नहीं ऐसा है विचार जिसका उसका नाम निर्वेद भूषण है। इस रीति से समगती के पांच भूषणों का वर्णन किया। अब समगती के (६) आयतन कहते हैं। निश्चय कुगुरु वह है कि जो श्री वीतराग सर्वज्ञ देव अपक्ष पाती परमेश्वर का वचन अर्थात् शास्त्र का खोटा (झूठा) अर्थ करे उस खोटे अर्थ से अनेक भोले

कुमार्ग में प्रवृत्त होजाते हैं इसलिये निश्चय कुगुरु हैं। और व्य-
वहार कुगुरु वह है कि जो आचार ज्ञान मपधारा जो यती
नाम धरावे और यती पना न पाले अथवा जगम मार्गी आदिक हैं।
अब कुदेव का स्वरूप कहते हैं कि निश्चय से कुदेव वह है जिनने
वितराग का स्वरूप न जाना। अथवा अपनी आत्मा का स्वरूप
जाना। अब इस जगह कोई ऐसा शंका करे कि भला देवका
स्वरूप न जाना सो वीतराग देव कुदेव कैसे हुआ इस शंका का
समाधान ऐसा कि जिस पुरुष ने देवका स्वरूप नहीं जाना और
वह उस देवको मानता है सो उस मानने वाले से देवका स्वरूप
जान बिना उस देवकी आशातना नहीं टलती और उसकी आज्ञा
नहीं पलती इसलिये वह आशातना करनेसे और अज्ञान पालनेसे
अनन्तसंसारी होता है। इसलिये निश्चय में कुदेव है कि व्यवहार
से कुदेव वह है कि जो राग सहित है कि जिसमें राग द्वेष है
और स्त्री आदिक का जिनको संग है वह व्यवहारसे कुदेव
है। निश्चय कुधर्म उसको कहते हैं कि एकांत मार्ग वाह्य करणी
का करना और अन्तरंग में ज्ञान नहीं जाना और आत्म
सत्ता नहीं जानकर केवल धम धर्म पुकारते हैं। व्यवहारसे
कुधर्म यह है कि शुद्ध धर्मको छोड़ कर वाम मार्गी अथवा पर
मतमें पड़ना उसका नाम व्यवहार से कुधर्म है। इस रीतिसे
कुदेव, कुगुरु, कुधर्म, का छोड़ना। सुदेव, सुगुरु, सुधर्म
को मानना उसीका नाम सम्यक्त्व है। अब समकित का
किंचित लक्षण पन्नवणा सूत्रसे कहते हैं। गाथा। परमत्थ सथ-
वोवा सुदिठ परत्थ सेवणावावि वावन कुदसणा वज्जाणायस
मत्त सद्दहणा॥ अर्थ॥ इस गाथाका परमार्थ ऐसा है कि छः

द्रव्य और नव तत्त्व अथवा इनका गुणपर्याय है तिनको ज्ञेय रूप मोक्ष मार्गका कारण द्रव्योंका जानना है इसलिये इनका मूल अर्थ जाननेके वास्ते बहुत अभ्यास करे और मिथ्या बहुत काये होय उसको सुदिठि करता भली तरह हर और जाने वारम्बार अभ्यास करे और इन छ द्रव्योंका जानना मोक्ष मोक्ष मार्ग जानकर अच्छी तरहसे गुरुकी सेवा करे क्योंकि ज्ञानी गुरुके पासही इन बोलोंके सूक्ष्म अर्थ प्राप्ति होते हैं इसलिये ज्ञानी गुरुका धारण करे और वारस कहता जिन मतमें यती नाम धरानेवाले अथवा दु ख गर्भित मोह गर्भित वैराग्य वाले हैं और क्षेत्रपाल आदि देवताओं को मानने वाले इनका सग न करे क्योंकि समकिती बिना उनका सग करनेसे मिथ्यात्वकी प्राप्ति होती है। और कुदर्शनी कहता अन्यमती आदि क उनका भी सगन करे और हरदम ज्ञान सीखनेकी इच्छा करे ऐसा है परिणाम जिसका उसको समकितकी सर्दहना जानना फिरभी समकितके वास्ते गाथा कहते हैं । गाथा । विरयास॰ ज्जाद कषाय हीणा महव्वयधराविव सम्मदिठिविहुणाकया विमुक्ख न पावति । अर्थ । सावद्य आरम्भसे विराम अर्थात् आरम्भ आदि कका त्याग किया है और क्रोधादि कषाय जीता है और पचम-हाव्रत पालता है ओर (४२) दोष आदि टाल कर अहार पानी लेता है इत्यादि अनेक क्रिया जिन मतकी कर रहा है परन्तु सम कितके बिना कदापी जीव मोक्ष जावे नहीं इसलिये समकित की मुख्यता है। अब इस जगह कोई ऐसी शका करे कि सम-कित क्या चीज है । तिसका सन्देह [illegible] वास्ते [illegible] करते हैं । गाथा । नयभंगपमाणेहिं

मासनमम्रुवसम्मादिठि उसानऊ । अर्थ । नय करके ज्ञान भाग करके ज्ञान और प्रमाण करके जाने जिसका कि अपने आत्मा के स्वरूपका क्योंकि स्याद्वाद आठ पक्ष का जानने वाला जीव अपना कल्याण करे और इस स्याद्वादरीति से मोक्ष मार्ग और कर्म व्यवस्थाको जानकर पर वस्तु का हेय अर्थात् छोड़ने के योग्य जान कर छोड़े और स्वय गुण अर्थात् जीव गुण ज्ञानदर्शन चारित्र उपादेय जान कर ग्रहण करे । ऐसा है व्यवहार निश्चय जी उसको समकिती जानना । अब समकिती जीव स्वरूपको ध्यान करे सो गाथा कहते हैं । गाथा अहमिक्को खलुसुद्धो निम्ममउनाणदसणसमग्गो तम्मिठिउंतच्चित्तो सव्वएणएनयनामि ॥ अर्थ ॥ जो समकिती ज्ञानी पुरुष है वह ऐसा विचार करे मैं एक हूं पर वस्तु अर्थात् पुद्गलसे न्यारा हूं और निश्चयनय अर्थात् निःसन्देह करके शुद्ध हूं । मेरे में अज्ञानमल किंचित भी नहीं निर्मल ममता करके रहित हूं और ज्ञानदर्शन करके सम्पूर्ण भरा हूं मैं ज्ञान से अपने में स्वभाव सहित प्रकाशवान हूं अपने गुण में ही सदा रहता हूं मेरेमें चेतना गुण सत्य है और शाश्वता है इस रीति से आत्मस्वरूपको ध्यावे सो सर्व कर्मरो क्षय करे। अब दूसरी गाथा और भी कहते हैं ॥ गाथा ॥ निरंजण निक्कल अयल देव अणाइ अणइ अणंत चेयण लक्खण सिद्धसमपरमप्पा सिवरान्त ॥ अर्थ ॥ मैं कर्म अंजन से रहित हूं इसलिये मैं निरंजन हूं कलंक करके रहित इस लिये मैं निःकलंक हूं अचल अर्थात् अपने स्वरूपसे कदापि न चलूं इस लिये मैं परमदेव हूं मेरा आदि भी नहीं और अन्तभी नहीं है केवल चेतना लक्षण प्रकाशरूप हूं सिद्धसमान हूं परमात्मा हूं परम उत्कृष्ट आत्मा हूं सिवरूप सिद्ध हूं सत्यसत्ता

मयी हूं । गाथा । जीवादि सद्दहण सम्मत्त रुम अधिगमानाण तथ
व सया रसम चरण एसोहु मुक्त पहा । अर्थ । जीवादि छः द्रव्य
को जान उसमेंसे पांच अजीव द्रव्यको छोड और एक जीव द्रव्य
के स्वगुणमें स्थिर रहे उसका नाम चारित्र है इस रीतिका ज्ञान
दर्शन चारित्र शुद्ध रत्न त्रयका समरना सोही मोक्ष मार्ग है इस
लिये इस ज्ञान दर्शन चारित्र का उद्यम यत्न करे और इस रत्न
त्रयको पाए कर प्रमाद न करे वो निश्चय चारित्र है । अब रत्न
त्रय व्यवहार की गाथा कहते हैं । गाथा नरियमग्गो मुक्खो
वनहारो पुन कारणा उभो पढमो सम्बर रूवो आसवहेउतईनाई
। अर्थ । निश्चय नय करके ज्ञान मार्ग सत्ता रूप सो मोक्ष का
कारण है अथात् मोक्ष है और व्यवहार नयसे जो क्रियाका करना
सो पुण्य बन्धनका कारण है इसलिये पहला जो कहा निश्चय
नय सो सम्बर रूप है तो सम्बर रूप निश्चय नय एक है दुजा
कहा । और जो व्यवहार नय है सो आश्रव रूप तथा कर्म बाधने
का हेतु है क्योंकि दया तो शुभ व्यवहार है सो पुण्य बन्धनका
हेतु है और अशुभ व्यवहार है सो पाप कर्म बन्धनका हेतु है ।
इस लिये इस आश्रव रूप व्यवहारके अनेक भेद हैं । अब इस
जगह शिष्य कहता है कि जब व्यवहार नय आश्रव है और
बन्धनका हेतु है तो हम व्यवहार नयको अंगीकार न करेंगे
केवल एक निश्चय नय सम्बर रूप को अंगीकार करेंगे
क्योंकि व्यवहार तो कर्म बन्धका हेतु है और निश्चय मोक्ष मार्ग
का हेतु है इसलिये निश्चयका अंगीकार करना ठीक है । ऐसा
शिष्यका प्रश्न सुनकर गुरु उत्तर देते हैं कि हे देवानु प्रिय ! निश्चय
व्यवहार दोनोंका अंगीकार करो क्योंकि शास्त्रोंमें श्रीवीतराग

सर्वज्ञ देवने निश्चय और व्यवहार दोनों ही का कथन किया है । (यदि उक्त गाथा) जइनिण मयपरउज्जइ वामाववहारनिरिय म्सु यह एकेय विणाविच्छ ठिज्जइ अन्नेणउंतच्च ॥ अर्थ ॥ श्री वीतराग सर्वज्ञ देव फरमाते हैं कि हे भव्य प्राणियों ! जो तुम्हारे को जिन मतकी चाहना है अथवा जिनमती हो तो मोक्ष सुख को तभी पाओगे जब निश्चयनय और व्यवहारनय, को अंगीकार करोगे। जब तुम्हारेको मोक्ष अर्थात् जन्म मरण मिट कर साश्वता सुख मिलेगा । इसलिये दोनो नय को मानना क्योंकि व्यवहार नय चलना और निश्चय नयकी श्रद्धा रखना । और जो तुम व्यवहारनय उठाओगे तो तीर्थ अर्थात् सासन उठ जायगा । इसलिये व्यवहार नयको मानना ठीक है क्योंकि गुरुको वन्दना नमस्कार करना और देवका पूजन आदिक करना अथवा तपस यम पच्चखाणादि व्यवहारके उठानेसे सब उठ जायगा । जब आचार क्रियादि सब उठ जाय तो निमित्त कारण भी उठ गया तो निमित्त कारणके उठनेसे अकेले उपादान कारणसे कार्यकी सिद्धि होय नहीं इसलिये निमित्त कारण रूप व्यवहार को अवश्यमेव मानना चाहिये । कदाचित् कोई अकेला व्यवहार नय माने तो निश्चय नय जाने बिना वस्तुरूप आत्म स्वरूप की खबर पड़े नहीं इसलिये तत्वरूप मार्ग जानने के वास्ते निश्चय नय चाहिये और बिना निश्चय के मोक्ष होवे नहीं इसलिये निश्चय नय और व्यवहार नय दोनो को मानना अवश्य मेव है क्योंकि शास्त्रो में ऐसा कहा है (ज्ञान क्रियाभ्याम् मोक्ष) इति वचनात् इसलिये ज्ञान से हेय और उपादेय की परीक्षा करके क्रिया करे क्योंकि जिस क्रिया में कर्म बन्ध हेतु होय उस क्रिया को हेय जान कर छोड़े

और जिस क्रिया में कर्म बन्धन होय और आत्म स्वरूप की प्राप्ति होय उस को उपादेय जान कर ग्रहण करे इस रीति से ज्ञान और क्रिया दोनों ही मोक्ष का हेतु है सो ज्ञान सहित क्रिया प्रमाण है। और ज्ञान बिना जो क्रिया का करना सो तुच्छ रूप पुण्य फल का कारण है इसलिये निश्चय बिना व्यवहार निष्फल है और निश्चय सहित व्यवहार फल दायक है सो इस जगह दृष्टांत देकर दिखाते हैं कि जैसे सोने के ग्रहण में शामिल हुआ जो उप धातु अर्थात् टाका आदिक सो भी उस सोने के साथ में ऊंचा बिकता है परन्तु सोने में उस उप धातुको जुदा करके बेच तो सोने के सामने उप धातु अर्थात् टाका को कोई नहीं लेता और सोने को सब कोई लेते हैं। तैसे ही सोने समान निश्चय नय है इसलिये निश्चय नय सहित जो व्यवहार सो अच्छा है। और निश्चय के बिना जो व्यवहार सो निष्फल है इसलिये श्री वीतराग सर्वज्ञ देव ने आगमों में निश्चय व्यवहार रूप मोक्ष का मार्ग कथन किया है। अब भव्य जीवों के वास्ते शरीर के ऊपर ममत्त न करे इस के वास्ते गाथा लिख कर दिखाते हैं (गाथा) छिज्जा भिज्जो जाय दाउ जो इहमेहु शरीर अप्पा भावे निम्मलोअपाव भववीर। अर्थ। हे भव्य प्राणियों! एकाग्र चित्त हो करके ऐसा चिन्तवन,अर्थात् ध्यान करो कि यह शरीर छिज्जो कहता चाहे जितना दुबला (नाताकत) और भिज्जा कहता पानीसे भी जो और नाशको प्राप्त होय क्यों कि यह शरीर पुदगलीक वस्तु है सो मेरा नहीं किन्तु पर वस्तु है सो यह पर वस्तु एक दिन अवश्यमेव छोड़ना पड़ेगी इसलिये हे प्राणी तू! अपनी आत्माको ग्रहण कर और उसीमें एकाग्र चित्तस

रमणता कर और वो आत्मा निर्मल है इसलिये तू ससार समुद्रसे तिर और जन्म मरण को मिटा । फिर दूसरा गाथा कहते हैं । गाथा । एहिज अप्पा सो परमप्पाकम्मविस सोई जायो जप्पा इयमें देव ज्ञाजु सो परमप्पा वहुतुह अप्पा अप्पा । अर्थ । श्री वीतराग सर्वज्ञ देव कहते हैं कि अहो भव्य जावो, यहा अपनी आत्मा जो इस शरीरमें है साही निश्चय अर्थात् नि सन्देह करके परमात्मा अर्थात् शुद्ध ब्रह्म है परन्तु अज्ञान अर्थात् कर्म रुप उपाधिके वशमें होकर इस ससारमें जन्म मरण करता है परन्तु जिस समयमें यह जाव अपने आत्म स्वरूपको जानगा उस वक्त उस अज्ञान रूप उपाधिको दूरकरगा तब परम देव परमात्मा तुही होगा । इसलिये हे भव्य प्राणियों ! तुम अपनी आत्माकाही सरण तारण जहाज जान कर एकाग्र चित्तसे आत्मा का ध्यान करो और इसमें लीन हो तो यह तुम्हारा आत्माही परमात्मा है इस परमात्मा पनेको सिद्ध करने के वास्ते कलिकाल श्रुत केवली अवतार श्री हेमाचार्य जी महाराज श्री वीतराग स्तोत्र म कहते हैं साही दिखाते हैं (श्लोक) य परात्मा पर ज्योति परम परमेष्ठिना आदित्य वर्णी तमस परस्ता दामनति यम् । १ ।सर्वे येनाद मूलयत समूला क्लेशपादपा इत्यादि । अर्थ । यह जीव ही परमात्मा परम ज्योति है और पच परमेष्ठी स अधिक अर्थात् बहुत पूज्य है क्योंकि पच परमेष्टी तो मोक्ष मार्ग का दिखाने वाला निमित्त कारण है और उपादान कारण नहीं और यह जो अपना आत्मा सो ही मोक्षका जानवाला और उपादान कारण है और अज्ञान को मिटानेवाला और सर्व क्लेश अर्थात् कर्मों को दूर करनेवाला यह जीव है इसलिये इस आत्मा हीका ध्यान

करना और इस आत्माही के ऊपर परम स्नेह रखना क्योंकि यह शुद्ध ब्रह्म परम निर्मल है। इस रीति को जान कर आत्मा को उपादेय अर्थात् ग्रहण करे और सरल्हे अपने से जिस मुजब निर्वाह होय तिस मुजब त्याग वैराग्यमें प्रवृत्त होय और धन आदि पर वस्तु जान करके सुपात्र और पात्र आदिका का अनेक रीतिमें दानदेय और इन्द्रिय आदिकोंका विषय कर्म बन्ध हेतु जान कर विषयको परिहरे (छोड) और शील अर्थात् ब्रह्मचर्य पाले। और अहार पुद्गल पर वस्तु है सो अहार आदिक शरीर की पुष्टी करनेवाला है और शरीरकी पुष्टीमें इन्द्रियोंका विषय बढता है और इन्द्रिय पुष्ट होती है सो शरीर इन्द्रिय आदिक पर स्वभाव और अज्ञानका बढानेवाला संसार का हेतु है क्योंकि इस शरीर इन्द्रियने अनादि कालसे नाना प्रकारके विषय आदिक अर्थात अहार (भोजन)आदिक नाना प्रकारका भोजन किया, परन्तु इसकी तृप्ति न हुई और संसार में जन्म मरण ही बढता गया इसलिये अहार आदिक का त्याग करना शक्ति अनुसार भव्य जीवों को अवश्यमेव उचित है। और श्री वीतराग सर्वज्ञ देवका पूजन भी करना उचित है क्योंकि वीतराग अर्हन्त भगवान मोक्ष मार्गका उपदेश दिया है इसीलिये वे वीतराग देव निमित्त कारण उपकारी हैं सो इन उपकारियोंका बहु मान भक्ति अर्थात् उनकी आज्ञा मानकर उस आज्ञा में चलना उनकी भाव पूजा है। इस रीति से जो दान शील तप पूजा सर्व जीव अजीव नाम निमित्त पुण्य रूप इन्द्रिय सुखका कारण है। और जो जीवका उपादेय अर्थात् ग्रहण करता हुआ इच्छा अर्थात् संसारी सुखके निमित्त जो दान शील तप आदिक का करना सो निर्जरा का हेतु है इसलिये ज्ञान निमित्त सर्व कर्म बन्धका हेतु है। इसलिये

ज्ञानका बहुत अभ्यास करना सो ज्ञान अभ्यास करने की श्री वीत राग सर्वज्ञ देव की सब भव्य जीवों को शिक्षा है। सो उस ज्ञान केनका हेतु श्रुत ज्ञान अर्थात् श्रवण करना है इसलिये श्रुत ज्ञान का बहुत अभ्यास करना, और भाव सहित धारना रखना और उसी म प्रवृत्त होना क्योंकि शास्त्रों म कहा ह सोही दिखाते हैं कि श्री गणागजी अथवा उत्तराध्ययन जी वा भगवती जी आदि अनेक सूत्रों में कहा है कि वाचना पूछना वारम्बार विचारना करे उससे महा निर्जरा होती है क्योंकि देखो बाचने से तो सूत्र का उच्चारण स्पष्ट होता है और पूछने से अर्थ स्पष्ट होता है उस अर्थ स्पष्ट होन से मिथ्या त्व मोहादिक दूर होता है और वारम्बार विचार अर्थात् मनन करने से समकित निर्मल होती है और अनुपेक्षा अर्थात् सत्य असत्य का जो मनन (विचार) करना उससे (७) कर्मकी स्थिति का रस पतला करता है। और अनन्ता ससार खपावे अथवा पतला करे यह दूर करनेकी अथवा पतला करने की शक्ति श्रुत ज्ञानका वारम्बार अभ्यास करनेसही अज्ञान मिटता है ऐसा श्रीवीतराग सर्वज्ञ देवने फर्माया है इसलिये हे भव्य प्राणियों ! वाचना अथवा पूछना वारम्बार इस का बहुत उद्यम करो क्योंकि आगम म ही धर्म है सोही दिखाते हैं कि इस हुन्डा सर्पनी पचम काल और भरत क्षेत्र में कोई केवल ज्ञानीतो है नहीं बल्कि मन पर्यव ज्ञानी और अवधि ज्ञानी भी नहीं है। और इस वर्तमान काल में श्रुत केवली की अस्तितता का निश्चय करना दुर्लभ है कि केवल अर्थात् किंचित श्रुत ज्ञान आगमका ही आधार है इसलिये इस कालको देखकर आत्मार्थि भव्य जीव दीनता सहित वचन कहते हैं सो गाथा दिखाते हैं। गाथा। कत्थ अम्हारी

सापाणी दुसमा दोसदूसिया हायणा हाकह हुतानहुतोजइ निणागमो । अर्थ । हे भगवन्त वीतराग सर्वज्ञ देव मेरे सरीखे प्राणियोंकी क्या गती होगी क्योंकि इस दुसमहुन्डा सर्पनी पचम काल इस भरत क्षेत्र मे अवतार अर्थात् जन्म लिया है सो हमारेको धर्म अर्थात् आत्म स्वरूप की प्राप्ति होना मुश्किल होगई इसलिये हम अनाथ हैं और दीन हैं क्योंकि ऊपर लिखी बातांके न होनेसे हां अलबत्ता किंचित् जो आपका कहा हुआ वचन है उसका हमको आधार है जो आपका कहा हुआ शास्त्र आगमन होता तो हमारी क्या गती होती सो अभी के काल में आगमकाही आधार है इस लिये हे भव्य प्राणियो जो तुम्हारे को आत्मार्थ की इच्छा है तो आगम और आगमधर अर्थात् बहुश्रुतका बहुत विनय करो क्योंकि आगममें विनय का फल श्रवण करना है और श्रवण करनेका फल ज्ञान है और ज्ञान का फल मोक्ष है । इसलिये आगम को श्रवण करके लेने (ग्रहण) करने के योग्य होय सो वो लेना और छोड़ने (दूर) करनेके योग्य होय सो छोडना और सरदहना शुद्ध रखना क्योंकि सरदहना ही मोक्ष का मूल कारण है और यह इन्द्रिय सुख इस जीव ने अनन्तिवार पाया क्योंकि ऐसी जीव योनि कोई नहीं है कि जिस में यह उत्पन्न न हुआ होय क्योंकि इस जीव ने अनन्ता पुद्गल परावर्त किया है इस संसारमें जीव को भ्रमण करते २ अनन्ता काल होगया परन्तु धर्म का संयोग न मिला सो कोई पुण्य संयोग से अब मनुष्य भव अच्छा जाति कुल निरोग शरीर पांच इन्द्रिय पूर्णता निर्मल बुद्धि इत्यादि अच्छे संयोग मिले हैं । और वीतराग सर्वज्ञ देव की वाणी का कहनेवाला शुद्ध गुरू का संयोग

मिलने से अहो भव्य प्राणियो ! तुम धर्म में विशेष उद्यम करो क्योंकि ऐसा संयोग मिलना बहुत मुश्किल है इसलिये प्रमाद (आलस्य) को छोड़दो अर्थात् मत करो क्योंकि यह शरीर धन कुटुंब आयुष्य चचल (चपल) है, छिन २ में घटता है जैसे जल्का अञ्जली हाथमे भरे और वह क्षण २ में घटती जाय वैसे ही आयु आदिक सब क्षण २ में घटती जाता है इसलिये पाच समवाय मिलनेसे मोक्षरूप कार्यकी सिद्धि होता है सो प्रथम पाच समवाय का नाम कहते हैं। १ काल। २ स्वभाव। ३ नियत। ४ पूर्वकृत। ५ पुरुषा कार। अर्थात् उद्यम ॥ इन पाच समवाय को माने सो तो समकिती है ॥ इन पाचमे से एक समवाय को भी उठावे (उत्थापे) सो मिथ्यात्वी है, ऐसा सम्मति सूत्रमे कहा है सोही दिखाते हैं ॥ गाथा ॥ कालो सहाव नियइ पुव्वकय पुरि सकारण पच समवाए समत्त एगत होय मिच्छत्त ॥ अब इसका भावार्थ कहते हैं कि काल लब्धि विना मोक्ष कार्य सिद्ध नहीं होता इसलिये कालभी सर्व कार्योंमें कारण है क्योंकि देखो जिस कालमें जो कार्य होने वाला होय उसी समय में वो कार्य होय इस रीतिसे काल समवायको अंगीकार करने कहा। अब इस जगह शिष्य प्रश्न करता है कि जब कालही सबका कारण है तो अभव्य मोक्ष क्यों नहीं जाता। तिसका उत्तर देते हुए दूसरा समवायका स्वरूप कहते हैं कि हे देवानु प्रिय ! अभव्य को काल तो मिला परन्तु उस अभव्य में स्वभाव अर्थात् पलटन पना नहीं है इस कारण से अभव्य मोक्ष नहीं जाय इसलिये काल और स्वभाव दो कारण चाहिये। फिर शिष्य कहने लगा कि भव्य जीव में पलटन का स्वभाव है तो सर्व भव्य काल मिल

मोक्ष नहीं जाते तिसका उत्तर देवे कहा कि जो नियत कहते निश्चय समकित गुण जगें उस समय मोक्ष को प्राप्त होते हैं—तब काल, स्वभाव, नियत यह तीन कारण माने हैं। तब फिर पूछा कि—समकित आदि कारण तो श्रेणिक राजा के थे तो फिर मोक्ष को प्राप्त क्यों न हुआ? उत्तर दिया कि उसके पूर्व कृत कर्म बहुत थे (पुरुषाकारके उद्यम न किये)। फिर पूछा कि शीलभद्र प्रमुखने तो बहु उद्यम बहुत किये थे। उस के उत्तर में कहा कि उस के पूर्व कृत शुभ कर्म खपे नहीं थे, इसीलिये पांच समवाय मिलनेसे कार्य सिद्धी होती है। तब फिर प्रश्न किया कि मरुदेवी माताको तो ४ कारण मिले थे पर पांचवा पुरुषाकार उद्यम कुछ भी नहीं किया था, उस के उत्तरमें कहा कि उसको उन्होंने क्षपक श्रेणी चढाने का शुक्लध्यान रूप उद्यम किया था इसी वास्ते पांच समवाय मिला बस इसी से मोक्ष रूप कार्य सिद्धी होती है।

जिस समय केवल ज्ञान करके सर्व द्रव्य रहित हैं, ऐसा देखें तो आकाश द्रव्य लोकालोक प्रमान हैं। उस में अलोक में दूसरा द्रव्य नहीं है लोकाकाशना एकेक प्रदेश में धर्मास्तिकाय का एकेक प्रदेश रहित है तथा अनन्ता जीव के अनन्त प्रदेश हैं। और अनन्ता पुद्गल परमाणु हैं और कालका समय सर्वत्र वर्त रहा है।

अब छे द्रव्य की फरसना कहते हैं—कि धर्मास्तिकाय का एक प्रदेश मे उसी के छ प्रदेश फरशे हैं वो इस प्रकार—कि चार दिशा के चार और पांचवा नीचे और छठा ऊपर यह छ प्रदेश फरशे हैं और एक मूल खुद प्रदेश इस प्रकार सात से प्रदेशका सम्बन्ध है और धर्मास्तिकाय का एक [illegible] अधर्मास्तिकाय के सात ७ प्रदेश फरशें [illegible] प्रदेशको

दूसरा द्रव्यक मूल क प्रदशको फरशते हैं वास्त ७ प्रदश का फर-शना है, और धर्मास्तिकायक एक प्रदशमें जीव पुद्गल के अनंता अनन्तम जो धम्मास्तिकाय क प्रदेश हैं। उन को आकाश का फरशना सो छआ दिशा का है। पर मूल प्रदेश सहित सात प्रदेश की फरशना है और दूसर द्रव्य की तीन दिशा का फरशना है। इसी प्रकार सर्व द्रव्याकी फरशना है और आकाश से धर्म्म अधर्म्म की अवगाहना सूक्ष्म है। धर्म्म अधर्म्म द्रव्य से जीवकी अवगाहना सूक्ष्म है। जावसे पुद्गलकी अवगाहना सूक्ष्म है।

इस तरह छ द्रव्य के गुण पर्याय सामान्य स्वभाव ११ हैं। और विशेष स्वभाव दस ह। या श्रीकेवली भगवन्त ज्ञान से जान, दर्शन से देख वो ११ सामान्य स्वभाव कहे हैं। १ अस्ति स्वभाव, २ नास्ति स्वभाव, ३ नित्य स्वभाव ४ अनित्यस्वभाव, ५ एक स्वभाव, ६ अनेक स्वभाव, ७ भेद स्वभाव, ८ अभेद स्वभाव, ९ भव्य स्वभाव, १० अभव्य स्वभाव, ११ परम स्वभाव यह ग्यारह सामान्य स्वभाव सर्व द्रव्य मे हैं यह सामान्य उपयोग दर्शन गुण से देखे। अब दस विशेष स्वभाव कहते हैं १ चतन स्वभाव, २ अचेतन स्वभाव ३ मूर्त्ति स्वभाव, ४ अमूर्त्ति स्वभाव, ५ एक प्रदेश स्वभाव, ६ अनेक प्रदश स्वभाव, ७ शुद्ध स्वभाव, ८ अशुद्ध स्वभाव, ९ विभाव स्वभाव, १० उपचरित स्वभाव, यह दस विशेष स्वभाव हैं यह काईक द्रव्य में काईक स्वभाव है और काईक द्रव्य में काईक स्वभाव नहीं हैं, यह ज्ञान से जान ले वो सिद्ध भगवान लोका-लोक सर्व ज्ञानोपयोगसे ज्ञाता सिद्ध भगवान लाकालोक सर्व ज्ञानोपयोगसे जान रहे हैं और दर्शनोपयोग से देख रहे हैं, ऐसे अनन्त गुण अरुपी सिद्ध भगवान हैं उसी प्रकार निजकी आत्मा को जाने, उपादेय करके ध्यावें वह समकित जानना।

॥ दोहा ॥

र्म वन दाहके, भए मिद्धजिनचन्द ॥
जो अप्पागणे. वदे ताको इद ॥ १ ॥
ग ऊपधसमी, ज्ञान सुधारस वृष्टी ॥
सुखामृत मरोनरी, जय २ सम्यक दृष्टी ॥ २ ॥
ज सद् गुरु मीसछे, एहिज शिवपुर माग ॥
जो निज ज्ञानादिगुण करजो परगुण त्याग ॥ ३ ॥
न वृक्ष सेवो भविक, चारित्र ममकेत मुल ॥
अमर अगम पद फल लहो जिनवर पदवी फूल ॥ ४ ॥
सवत सत्तर ठिहुत्तेर, मनशुद्ध फागुण मास ॥
मोटे कोट मरोट में, वसता सुख चोमास ॥ ५ ॥
सुविहित खरतर गच्छ सुधिर, युगवर जिन चद सूर ॥
पुण्य प्रधान प्रधान गुण, पाठक गुणे पडूर ॥ ६ ॥
तासु शिष्य पाठक प्रवर, सुमतिसार गुणवत ॥
सकल शास्त्र ज्ञायक गुणी, साधुरग जसवत ॥ ७ ॥
तासुशिष्य पाठक त्रिबुध जिनमत परमतजाण ॥
भविककमल प्रतिबोधवा, राज सागर गुरुभाण ॥८ ॥
ज्ञानधर्म पाठक प्रवर, शमदम गुणे अगाह ॥
राजहस गुरुगुरु शक्ति, सद्गुजगकरे सराह ॥ ९ ॥
तासुशिष्य आगमरुचि, जैन धर्म को दास ॥
देवचद आनद में, कीन्हों ग्रथ प्रकाश ॥ १० ॥
आगमसारोद्धार एह, प्राकृत संस्कृत रूप ॥
ग्रथ कियो देवचदमुनी, ज्ञानामृत रस कूप ॥ ११ ॥